रवीन्द्रनाथ ठाकुर

नटी की पूजा

श्रीभगवतीप्रसाद चन्दोला द्वारा अनूदित

विश्वभारती ग्रंथालय

६-३ द्वारकानाथ ठाकुर लेन

कलकत्ता

प्रथम बँगला संस्करण : १९२६

हिन्दी अनुवाद प्रथम संस्करण : १९३९

हिन्दी अनुवाद द्वितीय संस्करण : १९५१

प्राप्तिस्थान

विश्वभारती ग्रंथालय ६-३ द्वारकानाथ ठाकुर लेन कलकत्ता ७

भूमिका

अजातशत्रु पिता बिम्बिसार के राजसिंहासन के प्रति लुब्ध थे। यह जानकर महाराज बिंबिसार ने अपनी इच्छा से राजकाज पुत्र के हाथों सौंप दिया और स्वयं राजधानी से दूर रहने लगे।

राजवाटिका में कभी भगवान् बुद्ध ने अशोकतरु की छाया-तले उपदेश दिया था। बुद्धभक्त महाराज बिंबिसार ने उसी स्थान पर एक चैत्य की स्थापना करके राजकन्याओं को प्रतिदिन संध्या समय वहाँ अर्घ्य निवेदन करने की प्रेरणा दी थी।

राजमहिषी लोकेश्वरी अपने स्वामी महाराज बिंबिसार के राज्यत्याग से क्षुब्ध और अपने पुत्र चित्र के संन्यास-ग्रहण से मर्माहत हैं। एक ओर व्यवस्थित गृहस्थी के छिन्न होने का क्षोभ और दूसरी ओर धर्म की उदात्त पुकार—दोनों के खिंचाव में पड़कर उनका चरित्र एक अभिनव करुणा से मण्डित हो गया है।

लोकेश्वरी ॥ राजमहिषी, महाराज बिम्बिसार की पत्नी

मल्लिका ॥ महारानी लोकेश्वरी की सहचरी

वासवी, नन्दा, रत्नावली, अजिता, भद्रा ॥ राजकुमारियाँ

उत्पलपर्णा ॥ बौद्ध भिक्षुणी

श्रीमती ॥ बौद्ध-धर्मरता नटी

मालती ॥ बौद्ध-धर्मानुरागिणी ग्रामबाला, श्रीमती की सहचरी

दासियाँ और रक्षिणियाँ

नटी की पूजा

सूचना

भिक्षु उपालि का प्रवेश

गान

पूर्वगगन भागे
दीप्त हइल सुप्रभात
तरुणारुण रागे।
शुभ्र शुभ मुहूर्त आजि
सार्थक कर' रे,
अमृते भर' रे
अमित पुण्यभागो के
जागे, के जागे॥

कोई है?

भिक्षा चाहिए, भगवान् बुद्ध के नाम पर भिक्षा।

नटी का प्रवेश और प्रणाम

शुभम्भवतु कल्याणम्। वत्से, तुम कौन हो?

नटी। मैं इस राजमहल की नटी हूँ।

उपालि। इस पुरी में क्या आज अकेली तुम्हीं जाग रही हो?

नटी। राजकुमारियाँ सभी अब तक पड़ी सो रही हैं।

उपालि। भगवान् बुद्ध के नाम पर भिक्षा चाहिए।

नटी। प्रभु आज्ञा दें तो राजकुमारियों को बुला लाऊँ।

उपालि। आज तुम्हीं से भिक्षा लेने आया हूं।

नटी। मैं तो अभागिन हूँ। प्रभु के भिक्षा-पात्र के आगे मेरा दान कुंठित हो जाएगा। क्या दूँ, अनुमति दें।

उपालि। तुम्हारा जो भी श्रेष्ठ दान हो।

नटी। मुझमें श्रेष्ठ क्या है, सो तो जानती नहीं।

उपाली। ना, भगवान् ने तुमपर दया की है, वे जानते हैं।

नटी। प्रभो, तो वे स्वयं उठा लें, जो भी मेरा हो।

उपालि। वही लेंगे, तुम्हारी पूजा के फूल; ऋतुराज वसन्त जिस प्रकार पुष्पवन के आत्मदान को अपने आप ही जागरित कर लेते हैं। तुम्हारे लिये वही शुभ वेला आई है, मैं यह तुम्हें बता गया; तुम भाग्यवती हो।

नटी। मैं राह देखती रहूँगी।

प्रस्थान

राजकुमारियों का प्रवेश

प्रभो, भिक्षा लेते जायँ। लौट न जायँ, लौट न जायँ। यह क्या हुआ? चले गए?

रत्नावली। तुम्हें भय क्या है, वासवी? भिक्षा

लेनेवाले लोगों का कोई अभाव नहीं—कमी है भिक्षा देनेवालों की।

नन्दा। नहीं रत्ना, भिक्षा लेनेवाले लोगों को ही साधना करके ढूंढ़ निकालना पड़ता है। आज का दिन तो व्यर्थ हुआ।

प्रस्थान

प्रथम अंक

मगध प्रासाद : कुंजवन

महारानी लोकेश्वरी, भिक्षुणी उत्पलपर्णा

लोकेश्वरी। महाराज बिम्बिसार ने आज मुझे याद किया है ?

भिक्षुणी। हाँ।

लोकेश्वरी। आज उनके अशोक-चैत्य में पूजा का आयोजन है—जान पड़ता है इसीलिये ?

भिक्षुणी। आज वसन्त-पूर्णिमा है।

लोकेश्वरी। पूजा ? किसकी पूजा ?

भिक्षुणी। आज भगवान् बुद्ध का जन्मोत्सव है—उन्हीं के सम्मान में।

लोकेश्वरी। आर्यपुत्र से जाकर कहना कि मैंने अपनी सारी पूजा पूरी तरह से चुका दी है। कोई तो फूल चढ़ाता है और दीप चढ़ाता है—मैंने अपना संसार ही सूना करके दे डाला।

भिक्षुणी। क्या कहती हो महारानी ?

लोकेश्वरी। मेरा इकलौता बेटा, चित्र—मेरा राज-कुमार—उसको भिक्षु बनाकर भगा ले गया। फिर

भी कहता है, पूजा दो! लता का मूल काट गया और, फिर चाहे फूल की मंजरी!

भिक्षुणी। जिसे दिया है उसे तुमने खोया नहीं। जिसे गोद में पाया था आज उसीको तुमने विश्व में पाया है!

लोकेश्वरी। नारी, तुम्हारे पुत्र भी है?

भिक्षुणी। ना।

लोकेश्वरी। कभी था भी?

भिक्षुणी। ना, मैं अल्प वयस से ही विधवा हूं।

लोकेश्वरी। तो फिर चुप रह। जो बात जानती नहीं उसे बोल भी मत।

भिक्षुणी। महारानी, सत्यधर्म को तुम्हीं तो राजभवन में सब से पहले आवाहन कर के लाई थीं? तब फिर आज क्यों—

लोकेश्वरी। ओहो—देखती हूं याद तो है? मैंने समझा था कि वह सब बात तुम्हारे गुरु भूल गए होंगे। भिक्षु धर्मरुचि को बुलवाकर प्रतिदिन कल्याण पंचविंशतिका का पाठ करवा तब जल ग्रहण करती, एक सौ भिक्षुओं को अन्न देती तब टूटता मेरा उपवास, प्रति वर्ष वर्षा के अन्त में सारे संघ को त्रिचीवर वस्त्र देना था मेरा व्रत। बुद्ध के धर्म-वैरी देवदत्त के उपदेश से जिस दिन यहाँ सभी का मन डावाँडोल हो रहा था,

अकेले मैंने ही अविचल निष्ठा से भगवान् तथागत को इसी उद्यान के अशोक तले बिठलाकर सबको धर्मतत्त्व सुनवाया। निठुर, अकृतज्ञ, अन्त में मुझीको यह पुरस्कार! जो रानियाँ विद्वेष से जली थीं, मेरे भोजन में विष मिलाया जिन्होंने, उनका तो कुछ भी नही बिगड़ा, उनके बेटे तो राज भोग रहे हैं।

भिक्षुणी। दुनिया के भाव से धर्म का मोल नहीं आँका जाता महारानी। सोने की कीमत और प्रकाश की कीमत क्या एक है?

लोकेश्वरी। जिस दिन कुमार अजातशत्रु ने देवदत्त के सामने आत्मसमर्पण किया था, मैं निर्बोध उस दिन हँसी थी। सोचती थी कि फूटी डोंगी में बैठकर ये लोग समुद्र पार होना चाहते हैं।

देवदत्त के जोर पर, पिता के रहते हुए भी, राजा बन बैठूंगा, यह थी उनको अभिलाषा। मैंने निर्भय और सगर्व कहा था, देवदत्त से भी जिस गुरु के पुण्य का जोर अधिक है, उन्हींकी कृपा से अमंगल टल जाएगा। इतना दृढ़ मेरा विश्वास था! भगवान् बुद्ध को—शाक्यसिंह को—लाकर मैंने उनके द्वारा आर्यपुत्र को आशीर्वाद दिलाया। तब भी जीत हुई किसकी?

भिक्षुणी। तुम्हारी ही। उस जीत को भीतर से बाहर न लौटा देना।

लोकेश्वरी। मेरी जीत!

भिक्षुणी। और नहीं तो क्या। पुत्र का राज्य-लोभ देखकर महाराज बिम्बिसार स्वेच्छा से जिस दिन सिंहासन छोड़ सके थे, उस दिन उन्होंने जो राज्य जय किया था—

लोकेश्वरी। वह राज्य केवल कहने भर की बात है, क्षत्रिय राजा के लिये वह अशोभन है। और ज़रा मेरी ओर तो देखो! मैं आज पति के होते हुए भी विधवा, पुत्र के होते हुए भी निपूती, राजमहल के बीच होते हुए भी निर्वासिता हूं। यह तो केवल कहने की ही बात नहीं। जिन्होंने तुम्हारा धर्म कभी भी नहीं माना, वे ही आज मुझे देखकर अवज्ञा से हँसकर चले जाते हैं। तुम जिन्हें कहती हो श्रीवज्रसत्त्व, आज कहाँ हैं वे—पड़े न उनका वज्र इनके माथे पर।

भिक्षुणी। महारानी, इसमें सत्य कहाँ है! यह तो है क्षणिक स्वप्न—जाने भी दो ना उन्हें हँसते हुए।

लोकेश्वरी। हो न स्वप्न! पर मैं ऐसे स्वप्न को नहीं चाहती। मैं चाहती हूं और तरह का स्वप्न, जिसे कहते हैं धन, जिसे कहते हैं पुत्र, जिसे कहते हैं सम्मान। उसी स्वप्न से फूले-फूले जो इठलाते हुए इस ओर सिर उठाए चले जाते हैं, कहो न उन्हींसे जाकर। दें न वही पूजा!

भिक्षुणी। तो फिर जाऊं।

लोकेश्वरी। जाओ, किन्तु मेरी जैसी अबोध नहीं हैं

वे। उनका कुछ भी नहीं जायगा, सभी कुछ रहेगा,—उन्होंने तो बुद्ध को माना नहीं, शाक्यसिंह को दया तो उनके ऊपर हुई नहीं, तभी तो बच गईं—बच गईं वे। इस तरह चुपचाप क्यों खड़ी हो? धीरज का स्वाँग करना सीख गई हो?

भिक्षुणी। कैसे कहूं? इस समय भीतर ही भीतर धीरज टूटा जा रहा है।

लोकेश्वरी। धीरज टूट रहा है, तब भी मन ही मन मुझे केवल क्षमा कर रही हो। तुम लोगों की यह ढिठाई सही नहीं जाती! जाओ!

भिक्षुणी का प्रस्थानोद्यम

लोकेश्वरी। सुनो, सुनो, भिक्षुणी। चित्र ने अपना जाने क्या एक नया नाम रख लिया है। जानती हो तुम?

भिक्षुणी। जानती हूं, कुशलशील।

लोकेश्वरी। जिस नाम से उसकी मां ने उसे पुकारा था वह आज अपवित्र हो गया! तभी तो उसे फेंककर चल दिया वह!

भिक्षुणी। महारानी यदि चाहो तो उसको एक दिन तुम्हारे पास ला सकती हूं

लोकेश्वरी। लज्जा के मारे ऐसी चाह मैं करूंगी कैसे!

और आज तुम लाओगी उसे मेरे पास, जो प्रथम उसको पृथ्वी पर लाई थी !

भिक्षुणी। तो आज्ञा दो मैं जाऊं।

लोकेश्वरी। जरा ठहरो। तुमसे उसकी भेंट होती है ?

भिक्षुणी। होती है।

लोकेश्वरी। अच्छा, एक बार न हो उसे—यदि वह—ना, रहने दो।

भिक्षुणी। मैं उनसे कहूंगी। शायद उनके साथ तुम्हारी भेंट हो जाएगी।

प्रस्थान

लोकेश्वरी। शायद, शायद, शायद ! नाड़ी का रक्त देकर उसका पालन किया था, उसमें "शायद" कहीं भी नहीं घुला हुआ था। इतने दिन के मातृऋण का अधिकार आज इस नन्हें-से "शायद" पर आ रुका ! इसीको कहते हैं धर्म ! मल्लिका !

मल्लिका का प्रवेश

मल्लिका। देवी।

लोकेश्वरी। कुमार अजातशत्रु का कोई संवाद मिला ?

मल्लिका। मिला है। देवदत्त को लिवा लाने गए हैं। इस राज्य में त्रिरत्न पूजा का अब कुछ भी बाकी न रहेगा।

लोकेश्वरी। कायर ! राजत्व करते राजा का साहस

नहीं! बौद्ध धर्म की शक्ति कितनी है, वह सब मेरे ऊपर तय हो चुका है। तब भी उस नाचीज देवदत्त की आड़ में खड़े हुए बिना इस मिथ्या की उपेक्षा करने का साहस न हुआ!

मल्लिका। महारानी, जिनके पास बहुत होता है उन्हींके बहुत आशंकाएँ होती हैं। वे राज्येश्वर हैं, तभी तो भय के मारे सभी शक्तियों के साथ सन्धि की यह चेष्टा है। बुद्ध-शिष्यों का समादर जैसे ही अधिक हो जाता है वैसे ही वे देवदत्त के शिष्यों को बुलाकर उनका और भी अधिक समादर करते हैं। भाग्य को दोनों ओर से ही निरापद कर देना चाहते हैं।

लोकेश्वरी। मेरा भाग्य तो एकदम ही निरापद है। मेरा कुछ भी नहीं, तभी तो मिथ्या को सहायक बनाने की दुर्बल बुद्धि जाती रही।

मल्लिका। देवी, भिक्षुणी उत्पलपर्णा की ही जैसी तुम्हारी यह बात है। वे कहती हैं, लोकेश्वरी महारानी का भाग्य अच्छा है, मिथ्या जिन सब खूंटियों से मनुष्य को बाँधे रहती है, भगवान् महाबोधि की कृपा से उनकी वह सभी खूंटियाँ टूट गई हैं।

लोकेश्वरी। देख, वे सब बनावटी बातें सुनकर मुझे क्रोध आता है। अपने अति निर्मल कोरे सत्य को तुम लेकर रहो, मेरी ये मिट्टी से सनी हुई खूंटियाँ मुझे लौटा

दो। तब फिर से एक बार अशोक-चैत्य में दीप जलाऊंगी, एक सौ श्रमणों को अन्न दूंगी, उनके जितने मंत्र हैं सबका एक सिरे से जप कर जाऊंगी। और यदि वह न हो तो आवें देवदत्त, फिर चाहे वे सच्चे ही हों अथवा झूठे! जाऊं, एक बार प्रासाद शिखर पर जाकर देखूं, वे कितनी दूर हैं!

दोनों का प्रस्थान

वीणा हाथ में लिए हुए श्रीमती का प्रवेश

लतावितान तले आसन बिछाती है—दिगन्त पर

दृष्टि डालती है

श्रीमती। समय हो गया, तुम लोग आओ।

(अपने मन ही मन गाती है)

निशीथे को कये गेल मने,

की जानि की जानि।

से कि घूमे से कि जागरणे,

की जानि की जानि।

मालती का प्रवेश

मालती। तुम श्रीमती हो?

श्रीमती। हाँ री, क्यों, बोल तो।

मालती। तुमसे गान सीखने के लिये प्रतीहारी ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है।

श्रीमती। महल में तो तुम्हें पहले कभी देखा नहीं।

मालती। गाँव से अभी नई-नई आई हूं, नाम मेरा मालती है।

श्रीमती। क्यों आई बेटी? वहाँ क्या दिन नहीं कट रहे थे? अब तक थी पूजा की कली, देवता प्रसन्न थे; होगी भोग की माला उपदेवता हँसेंगे। व्यर्थ होगा तेरा वसन्त। गान सीखने आई है? इतनी ही तेरी आशा है?

मालती। सच कहूं? उससे भी कहीं अधिक बड़ी आशा है मेरी। कहते संकोच होता है।

श्रीमती। ओ, अब समझी। राजरानी होने की दुराशा। पूर्वजन्म में अगर अनेक पाप किए हों तो हो भी सकती हो। बन का पंछी सोने का पिंजड़ा देखकर लुभा जाता है, तभी जब कि उसके डैनों पर सवार हो जाती है दुर्बुद्धि। जा, जा, लौट जा, अभी समय है।

मालती। तुम क्या कह रही हो, दीदी, अच्छी तरह समझ नहीं पाती हूं।

श्रीमती। मैं कह रही हूं—

गान

बाँधन केन भूषण बेशे तोरे भोलाय
हाय अभागी!

मरण केन मोहन हेसे तोरे दोलाय,

हाय अभागी !

मालती। तुम मुझे कुछ भी नहीं समझीं। तो अब साफ ही बताती हूं। सुना है कि एक दिन भगवान् बुद्ध इस विश्राम-वन के अशोक तले आकर बैठे थे। कहते हैं कि महाराज बिम्बिसार ने वहीं पर एक वेदी बनवा दी है।

श्रीमती। हाँ, ठीक है।

मालती। राजभवन की स्त्रियाँ वहाँ पर सन्ध्या समय पूजन करती हैं।—मेरा यदि पूजा का अधिकार न हो तो मैं वहाँ को धूल झाड़ दिया करूंगी, इसी आशा को लेकर यहाँ गायिकाओं के दल में भर्ती हुई हूं।

श्रीमती। आओ बहन, आओ, अच्छा ही हुआ। राजकुमारियों के हाथ से पूजा का दीप धुँवा देता है अधिक, उजाला देता है कम। तुम्हारे इन दो निर्मल हाथों की ही प्रतीक्षा थी। किन्तु यह बात तुम्हें सुझाई किसने ?

मालती। कैसे कहूं, दीदी। आज हवा के हरेक झोंके में आग की तरह जाने कौन-सा एक मंत्र लग गया है। उस दिन मेरा भाई चला गया। उसकी आयु है केवल अठारह की। हाथ जोड़कर मैंने पूछा, "कहाँ जा रहा है भैया," वह बोला "खोजने को।"

श्रीमती। नदी की समस्त लहरों को समुद्र ने आज एक आवाज से पुकारा है। पूर्ण चन्द्र उग आया।—यह क्या! तुम्हारे हाथ में तो अंगूठी देख रही हूं। जाने कैसा लग रहा है! स्वर्ग की मंदार कलिका कहीं मिट्टी के मोल तो नहीं बिक गई?

मालती। तो फिर खुल कर ही कहूं—तुम सब बात समझ जाओगी।

श्रीमती। कितना ही रो-रो कर समझने की शक्ति आई है।

मालती। वे धनी थे, हम लोग दरिद्र। दूर से चुपके-चुपके उन्हें देखा करती। एक दिन आकर बोले, मालती मुझे बड़ी अच्छी लगती है। पिता ने कहा, यह मालती का सौभाग्य है। सब आयोजन जिस दिन पूरा हुआ, वे आए द्वार पर। वर के वेश में नहीं, भिक्षु के वेश में। काषाय वस्त्र और हाथ में दंड। बोले, यदि मिलन हुआ तो मुक्ति के पथ पर, यहाँ नहीं।—दीदी, तुम कुछ बुरा न मानना—अभी भी आँखों में आँसू आ रहे हैं, मन छोटा है न।

श्रीमती। आँखों का जल बह जाने दे न। मुक्ति-पथ की धूल उससे शान्त हो जायगी।

मालती। प्रणाम करके उनसे बोली, "मेरा बन्धन तो अभी टूटा नहीं। अंगूठी पहनाने का जो वचन दिया

था, उसे पूरा करते जाओ।" यही वह अंगूठी है। भगवान् की आरती में यह जिस दिन मेरे हाथ से उनके पाँवों में खिसककर गिर पड़ेगी, उसी दिन मुक्ति के पथ पर भेंट होगी।

श्रीमती। कितनी ही स्त्रियों ने घर बनाया था, आज उन्होंने घर को तोड़ डाला है। कितनी ही स्त्रियाँ चीवर पहनकर पथ पर निकल पड़ी हैं, कौन जाने पथ के खिंचाव से अथवा पथिक के? कई बार हाथ जोड़कर मन ही मन प्रार्थना करती हूं—कहती हूं "महापुरुष, उदासीन न बने रहो। आज घर-घर नारी की आँखों के पानी में तुम ने ही बाढ़ फैला दी है, तुम्हीं उन्हें शान्ति दो।" राजमहल की स्त्रियाँ वह आ रही हैं।

वासवी, नन्दा, रत्नावली, अजिता, मल्लिका और
भद्रा का प्रवेश

वासवी। यह बालिका कौन है, देखूं तो! केशों की कबरी बाँधी है, अलकों में दे रखा है जवा। नन्दा, जरा देखती जाओ, आक के फूलों की माला बनाकर वेणी को कितना ऊंचा करके लपेटा है। गले में गुंज फलों का हार दीखता है? श्रीमती, यह कहाँ से चली आई?

श्रीमती। गाँव से। इसका नाम मालती है।

रत्नावली। पाया है तुमने एक शिकार! उसको

शायद शिष्या बनाओगी? हम लोगोंका उद्धार तो कर न सकीं, अब गाँव की लड़की को पकड़कर मुक्ति का व्यवसाय चलाओगी!

श्रीमती। ग्राम बालिका को भला मुक्ति की क्या चिन्ता! वहाँ स्वर्ग के हाथों का काज ढँक नहीं गया है—न धूल से, न मणि-माणिक्य से—स्वर्ग इसीलिये उन्हें आप ही आप पहचान लेता है।

रत्नावली। स्वर्ग न जाऊं तो भी अच्छा, किन्तु तुम्हारे उपदेश के ज़ोर पर नहीं जाना चाहती। गणेश के चूहे की कृपा से सिद्धि-लाभ करने का मुझे उत्साह नहीं, वरंच यमराज के भैंसे को मानने को मैं राज़ी हूं।

नन्दा। रत्ना, तुम्हारा वाहन तो तैयार ही है,—लक्ष्मी का उल्लू। देख तो अजिता, श्रीमती को लेकर ऐसा मख़ौल क्यों! वह तो उपदेश देने आती नहीं।

वासवी। उसका चुप रहना ही तो बहुत सारा उपदेश हो जाता है। यही देखो न, गुप-चुप हँस रही है। यह क्या उपदेश नहीं हुआ?

रत्नावली। महान् उपदेश! और नहीं तो क्या, मधुर के द्वारा कटु को जय करेगी, हास्य के द्वारा भाष्य को।

वासवी। थोड़ा-सा झगड़ा क्यों नहीं करतीं, श्रीमती? इतनी मधुरता भला कहीं सही जा सकती है! मनुष्य

को लज्जित करने से तो नाराज़ कर देना कहीं अधिक अच्छा है।

श्रीमती। भीतर से यदि ऐसी भली होती तो बाहर से बुरे का भान करना कोई वैसा खटकता भी नहीं। कलंक का भान करना चाँद को ही शोभा देता है। किन्तु अमावस्या! वह यदि मेघ का मुखोटन पहिने तो?

अजिता। वह देखो, ग्राम-बालिका अवाक् होकर सोच रही है, राजमहल की स्त्रियों की रसना में रस नहीं, केवल धार ही है। क्या है तुम्हारा नाम, ज़रा भूल गई।

मालती। मालती।

अजिता। क्या सोचती थीं, बोलो न।

मालती। दीदी को प्यार करती हूं, इसीलिये दुःख हो रहा था।

अजिता। हम जिसे प्यार करती हैं उसे ही खिझाने का स्वांग रचती हैं। राजमहल के अलङ्कार-शास्त्र का यही नियम है। याद रखना इसे।

भद्रा। मालती, तू जाने कौन-सी एक बात कहने जा रही थी। कह क्यों नहीं डालती। हमलोगों के बारे में तुम क्या सोचती हो, यह जानने का बड़ा भारी कुतूहल हो रहा है।

मालती। मैं कहना चाहती थी, "हाँ जी, तुम लोग,

अपनी ही बात सुनना इतना पसन्द करती हो, गान सुनने का समय बीता जा रहा है।"

सभी का अट्टहास

वासवी। हाँ जी, हाँ जी! राजमहल के व्याकरणचुञ्चु को पुकारो, उनकी शिक्षा अभी सम्बोधन कारक की अन्तिम सीमा तक नहीं पहुँची।

रत्नावली। हाँ जी वासवी, हाँ जी राजकुल-मुकुट-मणि-मालिका!

वासवी। हाँ जी रत्नावली, हाँ जी भुवन-मोहन-लावण्य-कौमुदी—वाह, व्याकरण की यह कैसी नूतन उपलब्धि है! सम्बोधन में हाँ जी!

मालती। दीदी, ये क्या मुझपर नाराज़ हो गई हैं?

नन्दा। कोई भय नहीं मालती। दिग्बालिकाएँ जब हरसिंगार के वन में ओलों की वृष्टि करती हैं तो नाराज़ होकर नहीं करतीं, उनके प्यार करने का ढंग ही यही है।

अजिता। वह देखो, श्रीमती मन ही मन गाती जा रही है। हमारी बातें उसके कानों में पहुंचती ही नहीं। श्रीमती, गला खोलकर गाओ न, हम लोग भी साथ देंगी।

श्रीमती का गान

निशीथे की कये गेल मने,
 की जानि, की जानि।
से कि घूमे से कि जागरणे,
 की जानि, की जानि।
नाना काजे नाना मते
 फिरि घरे, फिरि पथे
से कथा कि अगोचरे बाजे क्षणे क्षणे,
 की जानि, की जानि।
से कथा कि अकारणे व्यथिछे हृदय,
 एकि भय, एकि जय।
से कथा कि काने काने बारे बारे कय,
 "आर नय, आर नय।"
 से कथा कि नाना सुरे
 बले मोरे, "चलो दूरे,"
से कि बाजे बुके मम, बाजे कि गगने,
 की जानि, की जानि।

वासवी। मालती, तुम्हारी आँखों में तो जल भर आया। इस गाने में क्या समझीं, बोलो तो।

मालती। श्रीमती एक पुकार सुन रही है।

वासवी। किसकी पुकार?

मालती। जिसकी पुकार पर मेरा भाई चला गया— जिसकी पुकार पर मेरा—

वासवी। कौन, तुम्हारा कौन?

श्रीमती। मालती, मेरी बहन, चुप रह, और न बोलना। आँखें पोंछ डाल, यह रोने की जगह नहीं।

वासवी। श्रीमती, उसे तुमने रोका क्यों? तुम क्या यह समझती हो कि हम केवल हँसना ही जानती हैं?

भद्रा। हम क्या बिलकुल ही नहीं जानतीं कि किस जगह पर हँसी शोभा नहीं देती?

मालती। राजकुमारी, आज तो हवा के झोंके-झोंके में बातें चल रही हैं, तुमलोगों ने क्या सुनी नहीं?

नन्दा। प्रभात के आलोक में कमल की पँखुरी खुल जाती है, किन्तु राजप्रासाद की दीवार तो नहीं खुलती।

लोकेश्वरी का प्रवेश, सभीका प्रणाम

लोकेश्वरी। मुझसे यह सहा नहीं जाता। सुनती नहीं हो, जहाँ-तहाँ रास्ते-रास्ते स्तव-ध्वनि— ॐ नमो बुद्धाय गुरवे, नमः संघाय महत्तमाय? उसे सुनकर अभी भी मेरी छाती के भीतर कँप-कँपी उठती है। (कानों पर हाथ देकर) आज ही इसे रोक देना चाहती हूं। अभी, अभी!

मल्लिका। देवी, शांत हों!

लोकेश्वरी। क्योंकर शांत होऊँ ? कौनसा मंत्र शांत करेगा ? वही, नमः परमशांताय, महाकारुणिकाय— यह मंत्र और नहीं सुनना चाहती, और नहीं। मेरा मंत्र है "नमो वज्र-क्रोध-डाकिन्यै नमः श्रीवज्रमहाकालाय।" अस्त्रों से, अग्नि से, रक्त से जगत् में शांति आएगी। नहीं तो क्या मां की गोद छोड़कर पुत्र चला जाता, सिंहासन से राज-महिमा जीर्ण पत्ते की भाँति झर पड़ती ?—तुम कुमारियाँ यहाँ क्या कर रही हो ?

रत्नावली। (हँसकर) अपने उद्धार की राह देख रही हैं। मलिन मन को निर्मल कर इस श्रीमती की शिष्या होने के पथ पर थोड़ा-थोड़ा अग्रसर हो रही हैं।

वासवी। तुम्हारी यह अत्युक्ति अश्राव्य है।

लोकेश्वरी। इस नटी की शिष्या! आख़िर यही तो होगा, अब ऐसा ही धर्म आया है। पतिता आएगी परित्राण का उपदेश लेकर! जान पड़ता है श्रीमती आज अचानक साध्वी हो उठी है! जिस दिन भगवान् बुद्ध अशोक-वन में आए थे, राजपुरी के सभी लोग उन के दर्शनार्थ गए, दया करके इसे बुला लाने के लिये भी मैंने आदमी भेजा था। पापिष्ठा नहीं ही आई। तो भी सुनती हूँ आज-कल भिक्षु उपालि राजमहल में एकमात्र उसीके हाथ की भिक्षा लेने आता है, राजकुमारियों की उपेक्षा कर चला जाता है। अरी नासमझ लड़कियो,

भोजवंश की ललनाएँ होकर तुमलोग इस धर्म की अभ्यर्थना करने चली हो,—उच्च आसन को खींचकर धूल में फेंक देने वाले इस धर्म की ! जहाँ राजा का प्रभाव था, वहाँ अब भिक्षु का प्रभाव होगा—इसीको धर्म कहती हो तुम, आत्मघातियो ? उपालि तुझे क्या मंत्र दे गया है, उच्चारण तो कर ज़रा नटी ! देखूं तेरी ढिठाई ! पापी रसना को पक्षाघात न हो जाएगा ?

श्रीमती। (हाथ जोड़े खड़ी होकर) ॐ नमो बुद्धाय गुरवे, नमो धर्माय तारिणे, नमः संघाय महत्तमाय नमः !

लोकेश्वरी। ॐ नमो बुद्धाय गुरवे—रहने दे रहने दे, रुक रुक।

श्रीमती। मद्विताय अनाथाय अनुकंपाय ये विभो—

लोकेश्वरी। (छाती पीटकर) अरी अनाथा, अनाथा ! —श्रीमती एक बार बोल तो, "महाकारुणिको नाथो"—

(दोनों आवृत्ति करती हैं)

महाकारुणिको नाथो हिताय सब्बपाणिनं
पूरेत्वा पारमी सब्बा पत्तो सम्बोधिमुत्तमं

लोकेश्वरी। हो गया, हो गया, बस अब रहने दे, और नहीं। "नमो वज्रक्रोधडाकिन्यै !"

अनुचरी का प्रवेश

अनुचरी। महारानी, इस ओर आइए एकान्त में।

(जनान्तिक में) राजकुमार चित्र जननी से मिलने आए हैं।

लोकेश्वरी। कौन कहता है कि धर्म मिथ्या है! जैसे पुण्य मंत्र का उच्चारण हुआ वैसे अमंगल भी टला! ओ री विश्वासहीनाओ, तुम मेरा अनुताप देख मन ही मन हँसी थीं! "महाकारुणिको नाथो"—उनकी करुणा में कितनी बड़ी शक्ति है! पत्थर भी गल जाता है। यह मैं तुम सभीसे कहे जाती हूं, फिर पाऊंगी पुत्र को, फिर पाऊंगी सिंहासन को। जिन्होंने भगवान् का अपमान किया है, देखूंगी कि उनका दर्प कै दिन चलता है! बुद्धं सरणं गच्छामि—

(बोलते-बोलते सहचरी सहित प्रस्थान)

रत्नावली। मल्लिका, हवा अब फिर किधर से बहने लगी?

मल्लिका। आजकल सारे आकाश में यह जो पागलपन की हवा फैली है, इसकी गति में भला कहीं कोई स्थिरता है? सहसा किसको कौन-सी दिशा में उड़ा ले जाय, कोई नहीं कह सकता। वह कलन्दक जिसने आज तक चालीस वर्ष जुआ खेलकर काटे, सुना है, वह हठात् उनका पूज्य हो उठा है। और फिर नन्दिवर्द्धन, जिसने यज्ञ में सर्वस्व देने का प्रण किया था, आज ब्राह्मण को देखते ही मारने दौड़ता है।

रत्नावली। तो फिर राजकुमार चित्र लौट आए!

मल्लिका। देखो न अन्त तक क्या होता है।

मालती। भगवान् दयावतार जिस दिन यहाँ पधारे थे, श्रीमती दीदी उन्हें देखने नहीं गईं, यह क्या सच है?

श्रीमती। सच है। दर्शन करना ही उनका पूजन करना है। मैं मलिन, मुझमें तो नैवेद्य प्रस्तुत नहीं था।

मालती। हाय, हाय, तो क्या हुआ दीदी!

श्रीमती। इतने सहज में उनके पास जाने से तो जाना ही व्यर्थ हो जाता है। उन्हें देखकर ही क्या देखा जा सकता है, उनके वचन कानों सुनकर ही क्या सुना जा सकता है?

रत्नावली। अच्छा, यह तो हमपर कटाक्षपात हुआ। थोड़े से प्रश्रय की हवा से नटी के सौजन्य का आवरण उड़ जाता है।

श्रीमती। बनावटी सौजन्य के अब मेरे दिन गए। ठकुरसुहाती न कहूंगी, साफ़ साफ़ कहूंगी: तुम्हारी आँखों ने जिसे देखा है, तुमने उसे सचमुच नहीं देखा।

रत्नावली। वासवी, भद्रा, इस नटी की ढिठाई को कैसे सह रही हो?

वासवी। बाहर से सत्य को यदि न सह सकूंगी तो भीतर से मिथ्या को सहन करना होगा। श्रीमती, गाओ

तो और एक बार अपने मंत्र को, हमारे मन के काँटों की नोक भोंथी हो जाय।

श्रीमती। ॐ नमो बुद्धाय गुरवे, नमो धर्माय तारिणे, नमः संघाय महत्तमाय नमः।

नन्दा। हम तो भगवान् के दर्शनार्थ गई थी, और भगवान् स्वयं ही आकर दर्शन दे गए श्रीमती को,— उसके अन्तर में।

रत्नावली। विनय भूल गई नटी! इस बात का प्रतिवाद न करोगी?

श्रीमती। क्यों करूंगी राजकुमारी? वे यदि मेरे भी अन्तर में पाँव रखें तो उसमें मेरा गौरव है या उन्हीका?

वासवी। रहने भी दे, बातों-बात बात बढ़ जाती है। अब गान गा।

श्रीमती का गान

तुमि कि एसेछो मोर द्वारे
खुजिते आमार आपनारे?
तोमारि जे डाके
कुसुम गोपने ह'ते बाहिराय नम्र शाखे शाखे,
सेइ डाके डाको आजि ता'रे।
तोमारि से डाके बाधा भोले,
श्यामल गोपन प्राण धूलि-अवगुण्ठन खोले,

से डाके त,मारि

सहसा नवीन ऊषा आसे हाते आलोकेर झारि,

देय साड़ा घन अन्धकारे।

नेपथ्य में

ॐ नमो रत्नत्रयाय, बोधिसंघाय, महासत्त्वाय, महाकारुणिकाय।

उत्पलपर्णा का प्रवेश

सभी। भगवति, नमस्कार।

भिक्षुणी। भवतु सब्बमंगलं रक्खन्तु सब्बदेवता।

सब्बबुद्धानुभावेन सदा सोत्थि भवन्तु ते॥

श्रीमती !

श्रीमती। क्या आज्ञा है ?

भिक्षुणी। आज वसन्त पूर्णिमा को भगवान् बोधिसत्त्व का जन्मोत्सव है। अशोक-वन में उनके आसन पर पूजा-करने का भार है श्रीमती के ऊपर।

रत्नावली। मालूम होता है कुछ ग़लत सुना। किस श्रीमती की बात कह रही हैं ?

भिक्षुणी। यह रही, इसी श्रीमती की;

रत्नावली। राजमहल की यह नटी ?

भिक्षुणी। हाँ यही नटी।

रत्नावली। स्थविरों से अनुज्ञा ली है आपने ?

भिक्षुणी। उन्हींका तो यह आदेश है।

रत्नावली। कौन हैं वे ? नाम तो सुनूं।

भिक्षुणी। एक तो हैं उपालि।

रत्नावली। उपालि तो नाई हैं।

भिक्षुणी। सुनन्द ने भी कहा है।

रत्नावली। वे तो ग्वाले के लड़के हैं।

भिक्षुणी। सुनीत का भी यही आदेश है।

रत्नावली। वे तो, सुना है, जाति के पुक्कस है।

भिक्षुणी। राजकुमारी, ये लोग जाति के सभी एक हैं। इनकी कुलीनता की बात तुम्हें नहीं मालूम।

रत्नावली। सचमुच ही नहीं मालूम। शायद यह नटी जानती है। मालूम होता है इसकी जाति से उनका कोई विशेष प्रभेद नहीं। नहीं तो इतनी ममता क्यों ?

भिक्षुणी। यह सच है। राजपिता बिम्बिसार "राजगृह" नगरी के निर्ज्जन वास से स्वयं आकर व्रत पालन करेंगे। उनका अभिनंदन कर आऊं।

प्रस्थान

अजिता। कहाँ चलीं श्रीमती ?

श्रीमती। अशोक-वन की आसन-वेदी को धोने जाती हूँ।

मालती। दीदी, मुझे संग ले लो।

नन्दा। मैं भी जाऊँगी।

अजिता। सोचती हूं मैं भी क्यों न चलूं।

वासवी। मैं भी देख आऊं, तुम लोगों का अनुष्ठान कैसा होता है।

रत्नावली। वाह, कैसी शोभा होगी! श्रीमती करेगी पूजा का आयोजन और तुम परिचारिकाओं का दल करेगा चामर-वीजन!

वासवी। और तुम यहाँ से अभिशाप की गरम उसाँसें छोड़ोगी। उससे अशोक-वन भी नहीं जलेगा, श्रीमती की शांति भी अक्षुण्ण रहेगी। (रत्नावली और मल्लिका को छोड़ बाक़ी सभी का प्रस्थान)

रत्नावली। न सहा जाएगा! कभी न सहा जाएगा! यह एक दम सभी कुछ के विरुद्ध है! मल्लिका, मैं पुरुष होकर क्यों न जनमी! इन कंगन पहननेवाले हाथों को धिक्कारने को जी चाहता है! काश, इनमें तलवार होती! तुम भी तो मल्लिका! बराबर चुपचाप बैठी थीं, एक भी बात तो न बोलीं तुम! क्या इस नटी के परिचारिका-पद की तुम भी कामना करती हो?

मल्लिका। कामना करने पर भी न पाऊँगी। नटी मुझे खूब पहचानती है।

रत्नावली। किस तरह चुपचाप सह लेती हो, मैं कुछ भी समझ नहीं पाती। धैर्य निरुपाय तुच्छ लोगोंका अस्त्र होता है, राजकन्याओं का नहीं।

मल्लिका। मैं जानती हूं कि प्रतिकार निकट ही है, इसलिये शक्ति का अपव्यय नहीं करती।

रत्नावली। निश्चित जानती हो?

मल्लिका। हाँ।

रत्नावली। यदि गुप्त बात हो तो मत कहो; केवल यही थोड़ा-सा जानना चाहता हूं कि नटी आज संध्या समय पूजा करेगी और राजकन्याएँ हाथ जोड़े खड़ी रहेंगी?

मल्लिका। नहीं, किसी तरह भी नहीं! मैं वचन देती हूं।

रत्नावली। राजगृहलक्ष्मी तुम्हारी वाणी सार्थक करें!

द्वितीय अंक

राज्योद्यान—लोकेश्वरी और मल्लिका

मल्लिका। पुत्र के साथ भेंट तो हुई महारानी! तो फिर अब भी क्यों—

लोकेश्वरी। पुत्र के साथ? पुत्र कहाँ? यह तो मृत्यु से भी बढ़कर है! पहले समझ न सकी थी!

मल्लिका। इस तरह की बातें क्यों कहती हैं?

लोकेश्वरी। पुत्र जब अपुत्र होकर मां के पास आता है, तो इस-जैसा और कोई भी दुःख नहीं। किस ढंग से उसने मेरी ओर देखा! उसकी मां एकदम लुप्त हो गई है—कहीं भी उसका कोई चिह्न नहीं रहा! अपने इतने बड़े सर्वनाश की तो मैं कभी कल्पना भी न कर पाती।

मल्लिका। रक्त-मांस के जन्म को सम्पूर्ण रूप से एक ओर फेंककर ये लोग निर्मल जन्म पा जाते हैं न, इसीलिये।

लोकेश्वरी। हाय रे रक्त-मांस! हाय री असह्य क्षुधा! असह्य वेदना! रक्त-मांस की तपस्या इनकी शून्य की तपस्या से क्या कुछ भी कम है!

मल्लिका। किन्तु जो भी कहिए देवी, उनको देखा मैंने, कैसा रूप है! आलोक से धुली हुई जैसे देवमूर्ति हो।

लोकेश्वरी। उसी रूप को लेकर वह अपनी मां को लज्जित कर गया। जिस मां का प्राण मेरी नाड़ियों में है, जिस मां का स्नेह मेरे हृदय में है, उसीको वह रूप धिक्कार दे गया! जो जन्म मैंने उसको दिया है, उस जन्म के साथ उसके इस नूतन जन्म का केवल विच्छेद मात्र हो, सो बात नहीं, विरोध है विरोध! देख मल्लिका, आज खूब अच्छी तरह समझ गई हूं, यह धर्म पुरुष की कृति है। इस धर्म में मां बेटे के लिये अनावश्यक है, स्त्री को पति का प्रयोजन नहीं। जो लोग न पुत्र हैं, न पति, न भाई, उन्हीं तरह-तरह के भगोड़ों को भीख देने के लिये समस्त प्राणों को सुखा-सुखाकर हम लोग शून्य घरों में पड़ी रहें! मल्लिका, इन पुरुषों के धर्म ने हमें मारा है, हम भी इसे मारेंगी!

मल्लिका। किन्तु देवी, देखती नहीं, स्त्रियाँ ही तो दल बाँधकर चली हैं बुद्ध को पूजा देने!

लोकेश्वरी। नासमझ हैं वे सब, भक्ति करने की उनकी क्षुधा का कहीं अन्त नहीं। जो उन्हें सबसे अधिक मारे उसको ही वे सबसे अधिक अर्पित करती हैं। इस मोह को मैंने प्रश्रय नहीं दिया।

मल्लिका। सिर्फ़ मुँह से ही कहती हैं, महारानी। अच्छी तरह जानती हूं, आपका वही पुत्र आज आपके सेवा-कक्ष के द्वार से बाहर आकर आपके पूजा-कक्ष के द्वार से भीतर प्रविष्ट हुआ है। आपका मानव-पुत्र गोद से उतरकर आज देव-पुत्र होकर आपके हृदय की पूजा-वेदी पर जा बैठा है।

लोकेश्वरी। चुप, चुप! अधिक न बोल! मैंने हाथ जोड़कर उससे अनुरोध किया, कहा, "एक रात के लिये अपनी मां के यहाँ रुक जाओ।" वह बोला, "मेरी मां की कोठरी के ऊपर छत नहीं—है केवल आकाश।" मल्लिका, यदि तू मां होती तो समझती कि यह बात कितनी कठोर है! वज्र देवता के हाथ का है किन्तु है तो वह वज्र ही। छाती क्या विदीर्ण नहीं हो जाती? उसी विदीर्ण छाती के छिद्रों में से होकर रास्ते पर जानेवाले श्रमणों का वह गर्जन मेरे अस्थि-पंजर के भीतर प्रतिध्वनित होकर चक्कर काट रहा है—"बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि, संघं सरणं गच्छामि"!

मल्लिका। यह क्या महारानी, मंत्रोच्चारण के साथ साथ आप आज भी नमस्कार करती हैं!

लोकेश्वरी। वही तो आफ़त है! मल्लिका, दुर्बल का धर्म मनुष्य को दुर्बल बनाता है। दुर्बल बनाना ही इस धर्म का उद्देश्य है। जितने ऊंचे मस्तक हैं उन सबको

यह धर्म नीचा करके छोड़ेगा। ब्राह्मण से कहेगा, सेवा करो, क्षत्रिय से कहेगा, भिक्षा माँगो। इसी धर्म के विष को जान-बूझकर मैंने अपने रक्त में बहुत दिन तक पाला है। इस कारण आज मैं ही इससे सबसे अधिक डरती हूं! वह कौन आ रहा है?

मल्लिका। राजकुमारी वासवी। पूजास्थल पर जाने के लिए तैयार हो कर आई हैं।

वासवी का प्रवेश

लोकेश्वरी। पूजा को चली हो?

वासवी। हाँ।

लोकेश्वरी। तुम तो अब सयानी हो गई।

वासवी। हमारे व्यवहार में क्या उसका कोई अनोखापन देखती हैं?

लोकेश्वरी। भोली बच्ची! सुना है, तुम्हीं लोग कहती फिरती हो, अहिंसा परमो धर्मः।

वासवी। हमलोगों से जिनकी कहीं अधिक उमर है, वे ही ज्यादा कहते फिर रहे हैं; हम तो केवल मुँह से धोखा करती हैं।

लोकेश्वरी। नासमझ को किस प्रकार समझाऊं कि अहिंसा ऐरे-ग़ैरों का धर्म है! हिंसा है क्षत्रिय के

विशाल बाहु पर माणिक्य का अंगद—निष्ठुर तेज से दीप्यमान।

वासवी। शक्ति का क्या कोमल रूप नहीं?

लोकेश्वरी। है, जहाँ वह डुबाती है। जहाँ वह दृढ़ता से बाँधती है, वहाँ नहीं। पर्वत को सृष्टिकर्त्ता ने निष्ठुर पत्थर का बनाया है, कीचड़ का नहीं। तुम्हारे गुरु की कृपा से ऊपर से नीचे तक सभी क्या कीचड़ हो जायँ? राजघर में पलकर भी इस बात को मानते घृणा नहीं होती? चुप क्यों रह गईं?

वासवी। सोच देखूँ, महारानी।

लोकेश्वरी। सोचने की बात ही क्या है! अपनी आँखों के सामने-ही तो देख लिया, राजकुमार एक घड़ी में राजा होना भूल गया। कह गया कि चराचर पर दया करने की साधना करूंगा। सुना नहीं वासवी?

वासवी। सुना है।

लोकेश्वरी। तो फिर निर्दयता करने का गुरुतर कार्य कौन करेगा? कोई भी यदि न करे तो फिर वीरभोग्या वसुन्धरा की क्या गति होगी? तरह तरह के माथा-भुकाए, उपवासजीर्ण, क्षीणकण्ठ, मन्दाग्निम्लान निर्जीवों के हाथों उसकी दुर्गति की कोई सीमा रह जाएगी? तुम लोग क्षत्रिय ललना हो, यह बात तुम्हें इतनी नई-सी क्यों लगती है वासवी?

वासवी। यह पुरानी बात आज हठात् जैसे एक ही दिन में ढँक गई—निष्पत्र किंशुक की शाखा जिस तरह वसन्त में फूलों से ढँक जाती है।

लोकेश्वरी। कभी कभी बुद्धिभ्रंश होने पर पुरुष अपना पौरुषधर्म भूल जाते हैं, किन्तु नारी उसे भूलने दे तो मौत है उस नारी की ही! महा-लता के लिए क्या महावृक्ष की ज़रूरत नहीं? प्रत्येक वृक्ष का गुल्म होना क्या उसके लिये अच्छा है? बोल न। मुंह में तो कहीं उत्तर नहीं!

वासवी। महावृक्ष निश्चय ही चाहिए।

लोकेश्वरी। किन्तु वनस्पति निर्मूल करने के लिये हो आए हैं ये तुम्हारे गुरु। तिस पर भी, परशुराम की तरह हाथ में कुठार धारण करें ऐसी उनमें शक्ति कहाँ! नीचे ही नीचे कोमल शास्त्र-वाक्यों के कीड़े लगाकर मनुष्यत्व की मज्जा को जीर्ण कर देंगे ये। बिना युद्ध ही पृथ्वी को निःक्षत्रिय कर देंगे। उनका भी कार्य पूर्ण होगा और तुम राजकन्याएँ सिर मुँडवाकर भिक्षापात्र हाथ में लेकर मारी-मारी फिरोगी! ऐसा हो कि उसके पहले ही तुम सब मर जातीं, यही मेरा आशीर्वाद है। क्या सोच रही हो? बात क्या मन में नहीं पैठ रही?

वासवी। अच्छी तरह सोच देखूं।

लोकेश्वरी। सोचकर देखने की ज़रूरत नहीं, प्रमाण

लो। आर्यपुत्र बिम्बिसार क्षत्रिय राजा हैं, राजत्व तो कोई उनके भोग की वस्तु नहीं, उसीमें उनकी धर्म-साधना है। किन्तु न जाने किस ऊसर के धर्म ने उनके कानों में मंत्र दिया नहीं कि बस इतने सहज ही में वे राजत्व से खिसक पड़े—अस्त्र हाथ में लेकर नहीं, रणक्षेत्र में नहीं, मृत्यु के मुख में भी नहीं! वासवी, एक दिन तुम भी राजमहिषी होगी क्या इस आशा को त्याग दिया तुमने ?

वासवी। क्यों त्यागूं ?

लोकेश्वरी। तो पूछती हूं, भला दया-मंत्र की हवा से जो राजा सिंहासन के ऊपर केवल लड़खड़ाता रहे, राजदण्ड जिसके हाथ में शिथिल हो, राजतिलक जिसके लालट पर म्लान हो, उसको श्रद्धापूर्वक वरण कर सकोगी ?

वासवी। ना।

लोकेश्वरी। अपनी बात कहूं। महाराज बिम्बिसार ने संवाद भेजा है कि वे आज आएँगे। उनकी इच्छा है कि मैं प्रस्तुत रहूं। तुमलोग समझती हो कि मैं उनके लिए शृंगार करूंगी! जो मनुष्य राजा भी नहीं, भिक्षु भी नहीं, जो मनुष्य भोग में भी नहीं, त्याग में भी नहीं, उसकी अभ्यर्थना! कभी नहीं। वासवी, तुमसे बारबार कहती हूं, इस पौरुषहीन आत्मावमानना के धर्म को किसी तरह स्वीकार न करना।

मल्लिका। राजकुमारी, किधर चली हो?

वासवी। घर की ओर।

मल्लिका। इधर नटी जो तैयार होकर आई है सो?

वासवी। रहने दे, रहने दे!

प्रस्थान

मल्लिका। महारानी, सुन रही हैं?

लोकेश्वरी। सुन तो रही हूं। बड़ा कोलाहल है।

मल्लिका। ये लोग ज़रूर आ पहुँचे हैं।

लोकेश्वरी। किन्तु, यह जो अभी भी सुन रही हूं, नमो—

मल्लिका। सुर बदला है। "नमो बुद्धाय" का गर्जन और भी प्रबल हो उठा है, आघात पाकर ही। साथ ही साथ वह सुनो—"नमः पिनाकहस्ताय!" भय की अब कोई बात नहीं।

लोकेश्वरी। टूटा रे टूटा! जब सब कुछ धूल में मिल जायगा, तब कौन जानेगा कि मैंने उसमें कितना प्राण ढाला था। हाय रे, कितनी भक्ति! मल्लिका, यह टूटने का काम शीघ्र हो जाय तो बच जाऊँ—उसकी नींव मेरी छाती के भीतर जो है।

रत्नावली का प्रवेश

रत्ना, तुम भी चली हो पूजा को?

रत्नावली। भ्रमवश पूज्य का पूजन नहीं भो कर सकती, किंतु अपूज्य की पूजा करने का अपराध मुझसे नहीं होता।

लोकेश्वरी। तो फिर कहाँ जा रही हो?

रत्नावली। महारानी के पास ही आई हूं। एक आवेदन है।

लोकेश्वरो। क्या है, कहो।

रत्नावली। वह नटी यदि यहाँ पूजा का अधिकार पाएगी तो फिर इस अपवित्र राजमहल में मैं न रह सकूंगी।

लोकेश्वरी। विश्वास दिलाती हूं आज यह पूजा न हो पाएगी।

रत्नावली। आज न हुई तो कल होगी।

लोकेश्वरी। भय नहीं बेटी, इस पूजा को जड़ से उखाड़ दूँगी।

रत्नावली। जो अपमान सहन किया है, इससे भी उसका प्रतिकार न होगा।

लोकेश्वरी। तुम यदि राजा के पास आवेदन करो तो नटी का निर्वासन क्या, प्राणदण्ड तक हो सकता है।

रत्नावली। यह तो उसका गौरव बढ़ाना होगा।

लोकेश्वरी। तो तुम्हारी क्या इच्छा है?

रत्नावली। वह जहाँ पर पुजारिन होकर पूजा करने

जानेवाली थी वहीं पर उसे नटी होकर नाचना होगा। मल्लिका, तुम तो चुप ही रह गईं! तुम क्या कहती हो?

मल्लिका। प्रस्ताव तो कौतुकजनक है।

लोकेश्वरी। मेरा मन तो गवाही नहीं दे रहा रत्ना!

रत्नावली। देखती हूं उस नटी के ऊपर महारानी की अब भी दया है।

लोकेश्वरी। दया! कुत्तों से उसके मांस को नुचवा सकती हूं। मुझे दया! अनेक बार अपने हाथों वहाँ मैंने पूजा की है। पूजा की वेदी चाहे टूट जाय, उसे भी सह लूंगी। किन्तु राजरानी के पूजा के आसन पर आज नटी का चरणाघात!

रत्नावली। ढिठाई माफ़ करना। उतनी-सी व्यथा को यदि प्रश्रय देंगी तो उस व्यथा के ऊपर ही पूजा की टूटी वेदी बार-बार बनती जायगी।

लोकेश्वरी। यह भय मन में एकदम ही न हो, सो बात भी नहीं।

रत्नावली। मोह में पड़कर जिस मिथ्या को सम्मान दिया था उसको दूर हटा देने ही से मोह नहीं कटता; उस मिथ्या का अपमान करें तभी मुक्ति पाएँगी।

लोकेश्वरी। मल्लिका, वह सुनो। उद्यान की ओर से अवाज़ आ रही है। तोड़ डाला, सब तोड़ डाला! ॐ नमो—जाय, जाय, सब टूट जाय!

रत्नावली। चलिए न, महारानी, देख आएँ!

लोकेश्वरी। जाऊंगी, किन्तु अभी नहीं।

रत्नावली। मैं देख आती हूं।

प्रस्थान

लोकेश्वरी। मल्लिका, बन्धन तोड़ने में बड़ी पीड़ा होती है।

मल्लिका। तुम्हारी आँखों से तो आँसू गिर रहे हैं।

लोकेश्वरी। वह सुनती नहीं? "जय काली कराली"—अन्य ध्वनियाँ क्षीण हो आईं, यह मैं सह नहीं सकती।

मल्लिका। बुद्ध के धर्म को निर्वासित करने से वह फिर लौट आएगा—किसी और धर्म से उसे दबाए बिना चैन नहीं। देवदत्त से जब नूतन मंत्र लोगी तभी सान्त्वना पाओगी।

लोकेश्वरी। छिः, छिः, यह मत कहो, यह मत कहो, ऐसी बात मुँह पर भी न लाओ! देवदत्त है क्रूर सर्प, नरक का कोड़ा! जब अहिंसा व्रत लिया था तब भी मन ही मन उसे प्रतिदिन दग्ध किया है, विद्ध किया है मैंने। और आज? जिस आसन पर अपने उन्हीं परम निर्मल ज्योतिर्भासित महागुरु को स्वयं ही लाकर बिठाया, उनके उसी आसन पर देवदत्त को बुला लाऊंगी! (घुटने टेककर) क्षमा करो प्रभो, क्षमा करो!

"द्वारत्रयेण कृतं सर्वं अपराधं क्षमतु मे प्रभो!" (उठकर) भय नहीं, मल्लिका, मुझमें भीतर जो उपासिका है वह भीतर ही रहे, बाहर तो है निष्ठुरा, है राजकुलवधु, उसको कोई परास्त न कर सकेगा। मल्लिका, अपने निर्जन निवास में जाकर बैठती हूँ, जब धूल के समुद्र में मेरी इतने दिनों की आराधना की तरणी एकदम ही डूब चुके, तब मुझे पुकारना।

दोनों का प्रस्थान

धूप दीप गंधमाल्य मंगलघट आदि पूजोपकरण लेकर राजमहल की स्त्रियों के एक दल का प्रवेश

पुष्पपात्र को घेरकर एक स्वर से

वण्ण-गंध-गुणोपेतं एतं कुसुम संततिं।
पूजयामि मुनिन्दस्स सिरि-पाद-सरोरुहे॥

प्रणाम और शंखध्वनि

धूप-पात्र को घेरकर

गन्ध-संभार-युत्त न धूपेनाहं सुगंधिना।
पूजये पूजनेय्यन्तं पूजाभाजनमुत्तमं॥

शंखध्वनि और प्रणाम

श्रीमती

प्रदीप के थाल को घेरकर

घनसारप्पदित्तेन दीपेन तमधंसिना ।
तिलोकदीपं सम्बुद्धं पूजयामि तमोनुदं ॥

शंखध्वनि और प्रणाम

आहार्य्य नैवेद्य को घेरकर

अधिवासेतु नो भन्ते, भोजनं परिकप्पितं ।
अनुकम्पं उपादाय पतिगण्हातुमुत्तमं ॥

शंखध्वनि और प्रणाम

घुटने टेककर

यो सन्निसिन्नो वरबोधिमूले
मारं ससेनं महतिं विजेत्वा ।
सम्बोधिमागच्छि अनन्तञाणो
लोकुत्तमो तं पणमामि बुद्धं ॥

श्रीमती । वन के प्रवेश-पथ में पूजा सम्पन्न हुई । अब चलो स्तूपमूल के पास ।

मालती । किन्तु श्रीमती दीदी, यह देखो, इस ओर का मार्ग बाड़ी से बन्द है ।

श्रीमती । लाँघकर जा सकेंगी, चलो ।

नन्दा । मालम होता है, राजा का निषेध है ।

श्रीमती। किन्तु प्रभु का आदेश है।

नन्दा। कितना भयंकर गर्जन है। यह क्या राष्ट्र-विप्लव है?

श्रीमती। गान आरम्भ करो।

गान

बाँधन-छेंड़ार साधन हबे।
छेड़े जाब तीर माभैः रवे।
जाँहार हातेर विजयमाला
रुद्रदाहेर वह्निज्वाला,
नमि नमि नमि से भैरवे।
काल-समुद्रे आलोर यात्री
शून्ये जे धाय दिवसरात्रि।
डाक एलो तार तरङ्गेरि,
बाजुक वक्षे वज्रभेरी
अकूल प्राणेर से उत्सवे॥

अन्तःपुर की रक्षिणियों के एक दल का प्रवेश

रक्षिणी। लौटो तुमलोग यहाँ से।

श्रीमती। हमलोग प्रभु की पूजा को निकली हैं।

रक्षिणी। पूजा बन्द है।

श्रीमती। आज प्रभु का जन्मोत्सव है।

रक्षिणी । पूजा बन्द है ।

श्रीमती । यह भी क्या सम्भव है ?

रक्षिणी । पूजा बन्द है । मैं और कुछ नहीं जानती । दो अपना अर्घ्य ।

पूजा का थाल आदि छीनना

श्रीमती । यह कैसी परीक्षा है मेरी ! क्या कोई अपराध हुआ है मुझसे ?

उत्तमङ्गेन वन्देहं पादपंसु वरुत्तमं ।
बुद्धे यो खलितो दोसो बुद्धो खमतु तं मम ॥

रक्षिणी । बन्द करो स्तव ।

श्रीमती । द्वार के निकट ही रुकावट ! मेरा प्रवेश भी नहीं हुआ, नहीं हुआ !

मालती । रोती क्यों हो श्रीमती दीदी ! बिना अर्घ्य के, बिना मंत्र के क्या पूजा नहीं होती ? भगवान् तो हमारे मन के भीतर ही जनमे हैं ।

श्रीमती । सिर्फ यही नहीं मालती, उनके जन्म में हम सभीने जन्म लिया है । आज सभीका जन्मोत्सव है ।

नन्दा । श्रीमती, हठात् एक मुहूर्त्त में ही आज ऐसे दुर्दिन की घटा क्यों घुमड़ आई ?

श्रीमती । आज तो दुर्दिन के सुदिन हो उठने का ही

दिन है। जो टूटा है वह जुड़ जाएगा, जो गिरा है वह अब फिर उठेगा।

अजिता। देखो श्रीमती, अब मुझे लगता है कि तुम को जो पूजा करने का भार दिया गया था, उसमें निश्चय ही भूल है। इसीसे सब कुछ नष्ट हुआ। पहले ही हमें समझ लेना चाहिए था।

श्रीमती। मैं डरती नहीं। जानती हूँ कि पहले से ही कोई मंदिर का द्वार खुला नहीं पाता। धीरे-धीरे ही खुलती है अर्गला। तब भी मुझे यह कहते कोई संकोच नहीं कि प्रभु ने मेरा आह्वान किया है। बाधा कट जाएगी—आज ही कट जाएगी।

भद्रा। राज-बाधा को भी दूर कर सकोगी?

श्रीमती। वहाँ तक राजा का राज-दण्ड नहीं पहुँचता।

रत्नावली का प्रवेश

रत्नावली। क्या कह रही थीं? सुन लिया, मैंने सब सुन लिया। तुम राज-बाधा भी नहीं मानतीं, तुम्हारा इतना साहस!

श्रीमती। पूजा में राजा की बाधा ही नहीं।

रत्नावली। नहीं है राजा की बाधा? सच? जाना

तुम पूजा करने, मैं देखूंगी दोनों आँखों को साध पूरी करके।

रत्नावली। जो अन्तर्यामी हैं वे ही देखेंगे। बाहर से सब कुछ दूर कर दिया उन्होंने, उससे रुकावट पड़ती थी। अब—

वचसा मनसा चेव वन्दामेते तथागते।
सयने आसने ठाने गमने चापि सब्बदा॥

रत्नावली। तुम्हारे दिन इस बार पूरे हो आए हैं, अहंकार नष्ट होगा।

श्रीमती। सो तो होगा ही। कुछ भी बाक़ी न रहेगा, कुछ भी नहीं।

रत्नावली। अब मेरी बारी है। मैं तैयार होकर आती हूं।

प्रस्थान

भद्रा। कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा। वासवी बुद्धिमती है, वह पहले ही कहीं खिसक गई।

अजिता। मुझे न जाने कैसा भय हो रहा है।

उत्पलपर्णा का प्रवेश

नन्दा। भगवति, किधर चली हैं?

उत्पलपर्णा। उपद्रव आया है नगर में, धर्म पीड़ित

है, श्रमण लोग शंकित हैं, मैं पौर-पथ पर रक्षामंत्र पढ़ने चली हूं।

श्रीमती। भगवति, मुझे साथ न ले चलोगी?

उत्पलपर्णा। कैसे ले चलूं? तुम्हें पूजा का आदेश जो है।

श्रीमती। पूजा का आदेश अब भी है देवि?

उत्पलपर्णा। समाधान न होते तक तो उस आदेश का अवसान नहीं।

मालती। किन्तु मातः, राजा की बाधा जो है?

उत्पलपर्णा। भय नहीं, धीरज धरो। वह बाधा अपने आप ही पथ बना देगी।

प्रस्थान

भद्रा। सुनती हो अजिता, रास्ते में वह क्रन्दन है, या गर्जन?

नन्दा। मुझे तो ऐसा लगता है कि उद्यान के भीतर कुछ लोग घुसकर तोड़ो-फोड़ कर रहे हैं। श्रीमती जल्दी चलो, राजमहिषी माता के निवास में जाकर शरण लें।

प्रस्थान

भद्रा। आओ अजिता, यह सभी कुछ एक दुःस्वप्न-जैसा प्रतीत हो रहा है।

राजकुमारी आदि का प्रस्थान

मालती। दीदी, बाहर से यह मृत्यु का रुदन सुनने में आ रहा है। अकाश में देखती हो वह शिखा! मालूम होता है नगर में आग लग गई। जन्मोत्सव में मृत्यु का यह तांडव क्यों?

श्रीमती। मृत्यु के सिंहद्वार में से ही तो जन्म की जय-यात्रा होती है।

मालती। मन में भय के आने से बड़ी लज्जा हो रही है दीदी। पूजा करने जाऊं और साथ में भय ले जाऊं, यह मुझसे सहा नहीं जाता।

श्रीमती। तुझे किस बात का भय बहन?

मालती। विपद का भय नहीं। कुछ भी तो नहीं सूझता, अंधेरा जान पड़ता है, इसीसे भय है।

श्रीमती। अपने-आपको बाहर से न देख। आज जिनका अक्षय-जन्म है उन्हींमें अपने को देख, तेरा भय मिट जायगा।

मालती। तुम गान गाओ दीदी, मेरा भय दूर हो जायगा।

श्रीमती का गान

आर रेखो ना आँधारे आमाय
देखते दाओ।
तोमार माझे आमार आपनारे
आमाय देखते दाओ॥

काँदाओ यदि काँदाओ एबार,
सुखेर ग्लानि सय ना जे आर,
जाक् ना धुये नयन आमार
अश्रु-धारे
आमाय देखते दाओ ।
जानि ना तो कोन् कालो एइ छाया,
आपन ब'ले भुलाय जखन
घनाय विषम माया ।
स्वप्न भारे जमल बोझा,
चिरजीवन शून्य खोंजा,
ये मोर आलो लुकिये आछे
रातेर पारे
आमाय देखते दाओ ॥

अन्तःपुर की एक रक्षिणी का प्रवेश

रक्षिणी । सुनो, सुनो, श्रीमती !

मालती । क्यों निठुर हो रही हो तुम सब ? हमें चले जाने को और न कहो ! हम दो लड़कियां उद्यान के निकट धरती पर बैठी रहें न ? इससे तुम्हारा क्या बिगड़ेगा ?

रक्षिणी । भला इससे तुम्हारा हो क्या प्रयोजन ?

मालती । भगवान् बुद्ध ने जिस उद्यान में एक दिन

प्रवेश किया था उसकी अन्तिम सीमा तक भी उनको पद-धूलि व्याप्त है। तुम यदि भीतर न जाने दो तो हम यहीं उसी धूलि पर बैठकर अपने हृदय में उनके जन्मोत्सव को ग्रहण करेंगी—मंत्र भी न बोलेंगी, अर्घ्य भी न देंगी।

रक्षिणी। मंत्र क्यों न बोलोगी? बोलो, बोलो। मंत्र भी न सुन पाऊं, क्या इतना पाप किया है! अन्य रक्षिणियाँ दूर हैं, इस समय आज के इस पुण्य दिन को श्रीमती, तुम्हारे मधुर कंठ से प्रभु का स्तव ही सुन लूं। तुम जानती हो मैं उनकी दासी हूं। जिस दिन वे अशोक-छाया-तले आए थे उस दिन मैंने उन्हें इन्हीं पाप-चक्षुओं से देखा था,—तब से वे मेरे हृदय में ही हैं।

श्रीमती। नमो नमो बुद्ध दिवाकराय,
नमो नमो गोतम-चन्दिमाय।
नमो नमो नन्तगुणन्नवाय,
नमो नमो साकियनन्दनाय॥

रक्षिणी, तुम भी मेरे साथ साथ बोलो।

रक्षिणी। मेरे मुँह से क्या पुण्य-मंत्र निकलेगा?

श्रीमती। हृदय में भक्ति है, जो बोलोगी वही पुण्य-मंत्र होगा। बोलो, नमो नमो बुद्ध दिवाकराय—

रक्षिणी। मेरी छाती का बोझ उतर गया श्रीमती, आज का दिन मेरा सार्थक हुआ।—जो बात कहने आई

थी अब वह कह लूं। तुम यहाँ से भाग जाओ, मैं तुम्हारे लिये रास्ता किए देती हूं।

श्रीमती। क्यों?

रक्षिणी। महाराज अजातशत्रु ने देवदत्त से दीक्षा ली है। उन्होंने प्रभु का अशोक-तलेवाला आसन तोड़ दिया है।

मालती। हाय हाय दीदी, हाय हाय, मैं न देख पाई! मेरा भाग्य खोटा है, सब ध्वंस हो गया!

श्रीमती। क्या कहती है मालती! उनका आसन अक्षय है। महाराज बिम्बिसार ने जिसे गढ़वाया था, वही ध्वंस हुआ है। प्रभु के आसन को क्या पत्थरों के द्वारा पक्का करना होगा? भगवान् की अपनी महिमा ही उसकी रक्षा करती है।

रक्षिणी। राजा ने घोषणा की है कि वहाँ पर यदि कोई आरती करके स्तव-मंत्र पढ़ेगा तो उसे प्राण-दंड होगा। श्रीमती, फिर तुम यहाँ रहकर क्या करोगी?

श्रीमती। प्रतीक्षा करती रहूंगी।

रक्षिणी। कब तक?

श्रीमती। जब तक पूजा की पुकार न आए!—जब तक जीती हूं तब तक!

रक्षिणी। आज तुमसे पहले ही क्षमा माँगे लेती हूं श्रीमती!

श्रीमती। क्षमा किस बात की?

रक्षिणी। शायद राजा के आदेश से तुमपर भी आघात करना पड़ेगा।

श्रीमती। करो आघात।

रक्षिणी। वह आघात तो होगा राजमहल की नटी पर, किन्तु प्रभु की भक्त सेविका को आज भी मेरा प्रणाम, उस दिन भी मेरा प्रणाम, मुझे क्षमा करो!

श्रीमती। मेरे प्रभु मुझे सारे आघात क्षमा करने का वर दें! बुद्धो खमतु, बुद्धो खमतु!

अन्य रक्षिणियों का प्रवेश

दूसरी रक्षिणी। रोदिनी!

पहली रक्षिणी। क्या है पाटली?

पाटली। भगवती उत्पलपर्णा को उन्होंने मार डाला है।

रोदिनी। अनर्थ हो गया, अनर्थ!

श्रीमती। किसने मारा?

पाटली। देवदत्त के शिष्यों ने।

रोदिनी। तो रक्तपात शुरू हो गया। यदि ऐसा है तो फिर हमारे हाथों में भी अस्त्र है। यह पाप हमसे सहा नहीं जाएगा। यह तो प्रभु के संघ की हत्या हुई। श्रीमती, क्षमा से काम नहीं चलेगा, अस्त्र सँभालो!

श्रीमती। लोभ मत दिखाओ रोदिनी! मैं नटी हूं, तुम्हारी वह तलवार देखकर मेरे ये नाच के हाथ भी चंचल हो उठे।

पाटली। तो यह लो।

तलवार देती है

श्रीमती। (सिहरकर हाथ से तलवार गिरा देती है) ना, ना। मैंने प्रभु के पास से अस्त्र पाया है। चल रहा है मेरा युद्ध, मार परास्त हो, प्रभु की जय हो!

पाटली। चल रोदिनी, भगवती की मृत-देह श्मशान को ले चलनी होगी।

दोनोंका प्रस्थान

कुछ रक्षिणियों सहित रत्नावली का प्रवेश

रत्नावली। ओहो, यह तो यहीं है। सुना दो उसे राजा का आदेश।

रक्षिणी। महाराज का आदेश है कि तुम नटी हो, तुमको अशोकवन में नाचने के लिये जाना होगा।

श्रीमती। नाच! आज!

मालती। तुमलोग यह कैसी बात कह रही हो जो? ऐसा आदेश देते महाराज को भय न हुआ?

रत्नावली। भय होने की तो बात ही है। वही दिन तो आया है। अपनी नटी-दासी से भय करेंगे राजेश्वर! उजड्ड गँवार!

श्रीमती। नाच किस समय होगा?

रत्नावली। आज आरती के समय।

श्रीमती। प्रभु की आसन-वेदी के सामने?

रत्नावली। हाँ।

श्रीमती। तो ऐसा ही हो!

सभीका प्रस्थान

भिक्षुओं का प्रवेश और गान

हिंसाय उन्मत्त पृथ्वी, नित्य निठुर द्वन्द्व
घोर कुटिल पन्थ तार लोभ जटिल बन्ध।
नूतन तव जन्म लागि कातर सब प्राणी
कर त्राण महाप्राण, आन अमृतवाणी,
विकसित कर प्रेमपद्म चिर-मधु-निष्यन्द।
शान्त हे, मुक्त हे, हे अनन्तपुण्य,
करुणाघन, धरणीतल कर कलंकशून्य॥

एस दानवीर दाओ त्यागकठिन दीक्षा,
महाभिक्षु लओ सबार अहंकार भिक्षा।

लोक लोक भुलुक् शोक खण्डन कर मोह,
उज्ज्वल होक् ज्ञान-सूर्य्य-उदय-समारोह,
प्राण लभुक सकल भुवन नयन लभुक अन्ध ।
शान्त हे, मुक्त हे, हे अनन्तपुण्य,
करुणाघन, धरणीतल कर कलंकशून्य ॥

क्रन्दनमय निखिल हृदय तापदहनदीप्त,
विषयविष-विकारजीर्ण दीर्ण अपरितृप्त ।
देश देश परिल तिलक रक्त कलुष ग्लानि,
तव मंगल शंख आन तव दक्षिणपाणि ।
तव शुभ-संगीत-राग तव सुन्दर छन्द ।
शान्त हे, मुक्त हे, हे अनन्तपुण्य,
करुणाघन, धरणीतल कर कलंकशून्य ॥

तृतीय अंक

राजोद्यान

मालती और श्रीमती

मालती। दीदी, कुछ शान्ति नहीं मिल रही।

श्रीमती। क्या हुआ ?

मालती। तुमको जब वे नाच का साज कराने ले गईं तो मैंने चुपचाप उस प्राचीर के पास जाकर रास्ते की ओर दृष्टि डाली। देखती क्या हूं कि भिक्षुणी उत्पलपर्णा की मृत-देह ले जाई जा रही है और—

श्रीमती। रुक क्यों गई ? बोलो।

मालती। नाराज़ तो न होगी दीदी ? मैं बड़ी दुर्बल हूं !

श्रीमती। बिल्कुल नहीं।

मालती। देखा कि अंत्येष्टिमंत्र पढ़ते-पढ़ते शव के साथ-साथ जा रहे थे।

श्रीमती। कौन जा रहे थे ?

मालती। दूर से ऐसा लगा कि जैसे वे ही हों।

श्रीमती। कुछ असम्भव नहीं।

मालती। प्रण किया था, जब तक मुक्ति न पाऊंगी उन्हें दूर से भी न देखूंगी।

श्रीमती। तो उसी प्रण को निभा। समुद्र की ओर अनिमेष ताकते रहने से तो पार दिखाई नहीं देता! दुराशा में मन को न भटका।

मालती। उन्हें देखने की आशा से मन को आकुल कर रही हूं, ऐसा न समझो। भय है कहीं वे लोग उन्हें मार न डालें। इसीसे पास रहना चाहती हूं। प्रण नहीं रख पा रही, ऐसा समझकर मेरी अवज्ञा न करो दीदी!

श्रीमती। मैं क्या तेरी व्यथा समझती नहीं?

मालती। उनको बचा न सकूंगी किन्तु स्वयं मर तो सकती हूं। अब सह न सकूंगी दीदी, अब की तो सब ध्वंस ही हो गया। इस जीवन में मुक्ति न होगी।

श्रीमती। जिनके पास जा रही है वही तुझे मुक्ति दे सकते हैं। कारण, वे मुक्त हैं। तेरी बात सुनकर आज एक बात समझ पाई हूं—

मालती। क्या समझीं दीदी?

श्रीमती। अब भी मेरे हृदय के भीतर पुराना घाव दबा हुआ है, वह फिर दुख गया। बन्धन को बाहर से जितना ही अधिक भगाया है उतना ही वह भीतर जा छिपा।

मालती। राजमहल में तुम-जैसा एकाकी प्राणी कोई

और नहीं, इसीसे तुम्हें छोड़कर जाते हुए बड़ा कष्ट पा रही हूं। किन्तु जाना ही पड़ रहा है। जब समय पाओ, मेरे लिये क्षमा का मंत्र पढ़ना।

श्रीमती। "बुद्धे यो खलितो दोसो,
बुद्धो खमतु तं ममं।"

मालती। (प्रणाम करते-करते) "बुद्धो खमतु तं ममं।" चलते चलाते एक गान सुना दो। किन्तु तुम्हारे उस मुक्ति के गान को आज ज़रा भी मन न दे पाऊंगी। कोई पथ का गान गाओ।

श्रीमती का गान

पथे जेते डेकेछिले मोरे।
पिछिये पड़ेछि आमि जाब जे की करे।
एसेछे निविड़ निशि,
पथरेखा गेछे मिशि',
साड़ा दाओ, साड़ा दाओ आँधारेर घोरे॥
भय हय पाछे घुरे घुरे
जत आमि जाइ तत जाइ चले दूरे।
मने करि आछो काछे
तबु भय हय पाछे
आमि आछि तुमि नाइ कालि निशिभोरे॥

मालती। सुनो दीदी, फिर गर्जन! दया नहीं, किसीके

भी दया नहीं ! अनन्तकारुणिक बुद्ध ने इस पृथ्वी पर पदार्पण किया, तिस पर भी यह नरक की शिखा शान्त न हुई ! अब देर नहीं कर सकती। प्रणाम दीदी ! जब मुक्ति पाओ तो मुझे एक बार आवाज़ देना, एक बार अन्तिम प्रयास कर देखना।

श्रीमती। चल, तुझे प्राचीर-द्वार तक पहुंचा आऊं।

दोनों का प्रस्थान

रत्नावली और मल्लिका का प्रवेश

रत्नावली। देवदत्त के शिष्यों ने भिक्षुणी को मारा है ! इसके लिये इतना सोच-विचार किस बात का ? वह तो एक खेतिहर की लड़की थी।

मल्लिका। किन्तु आज तो वह भिक्षुणी है।

रत्नावली। मंत्र पढ़ने से क्या रक्त बदल जाता है ?

मल्लिका। आजकल तो देखती हूं कि मंत्र का परिवर्तन रक्त के परिवर्तन से कहीं अधिक बढ़कर है।

रत्नावली। रहने दे वह सब बातें ! प्रजा को उत्तेजित देख राजा को चिन्ता ! यह मैं नहीं सह सकती। तुम्हारे भिक्षु-धर्म ने राज-धर्म को नष्ट किया है।

मल्लिका। उत्तेजना का और भी तनिक-सा कारण है। महाराज बिम्बिसार पूजा के लिये यात्रा करके निकले हैं किन्तु प्रजा संदेह करती है कि अभी पहुँचे नहीं।

रत्नावली। कानाफूसी चल रही है, मैंने भी सुना है। बात तो अच्छी नहीं, यह मैं मानती हूं। किन्तु कर्म-फल हाथों हाथ दिख रहा है।

मल्लिका। क्या कर्म-फल देखा तुमने?

रत्नावली। महाराज बिम्बिसार ने पिता के वैदिक-धर्म का विनाश किया है। क्या यह पितृ-हत्या से बढ़कर नहीं? ब्राह्मण लोग तो तभी से कह रहे हैं कि यज्ञ की जो अग्नि उन्होंने बुझाई है, वही क्षुधित अग्नि एक दिन उनको खा जाएगी।

मल्लिका। चुप चुप, हौले कहो। जानती तो हो, अभिशाप के भय से वे किस तरह अवसन्न हो गए हैं!

रत्नावली। किसका अभिशाप?

मल्लिका। बुद्ध का अभिशाप। मन ही मन महाराज उनसे बड़ा भय करते हैं।

रत्नावली। बुद्ध तो किसी को अभिशाप नहीं देते। अभिशाप देना तो जानता है देवदत्त।

मल्लिका। इसीसे उसका इतना मान है। दयालु देवता को मनुष्य बातों ही बातों में बहला लेता है, हिंसालु देवता को देता है बहुमूल्य अर्घ्य।

रत्नावली। जो देवता हिंसा करना नहीं जानता, उसको उपवास करना पड़ता है—नख-दन्त-हीन वृद्ध सिंह की तरह।

मल्लिका। जो भी हो, यह कहे जाती हूं कि आज संध्या समय इस अशोक-चैत्य में पूजा अवश्य होगी।

रत्नावली। होनी हो तो हो, किन्तु नाच उसके पहले ही होगा, यह भी मैं कहे देती हूं।

मल्लिका का प्रस्थान

वासवी का प्रवेश

वासवी। तैयार होकर आई हूं।

रत्नावली। किसलिये ?

वासवी। प्रतिशोध के लिये। बहुत लज्जित किया है उस नटी ने।

रत्नावली। उपदेश देकर ?

वासवी। ना, भक्ति कराके।

रत्नावली। इसीसे छुरी लेकर आई हो ?

वासवी। इसलिये नहीं। राष्ट्र-विप्लव की आशंका है। ख़तरे में पड़ी तो निहत्थी न मरूंगी।

रत्नावली। नटी से किस तरह बदला लोगी ?

वासवी। (हार दिखलाकर) इस हार के द्वारा।

रत्नावली। तुम्हारा हीरे का हार !

वासवी। बहुमूल्य अपमान ही राजकुल के उपयुक्त है। वह नाचेगी और मैं उसपर पुरस्कार उठाकर फेंक दूंगी।

रत्नावली। वह यदि तिरस्कार करके वापिस फेंक दे तुम्हारे ऊपर? अगर न ले?

वासवी। (छुरी दिखलाकर) तब यह है।

रत्नावली। महारानी लोकेश्वरी को शीघ्र बुला लाओ, वे ख़ूब ख़ुश होंगी।

वासवी। आते हुए मैंने उन्हें खोजा था। सुना कि किवाड़ लगाकर कमरे में बंद हैं। राष्ट्र-विप्लव के भय से या पति पर मान करके—कुछ समझ में न आया!

रत्नावली। किन्तु आज नटी का नतिनाट्य होगा, उसमें महारानी को उपस्थित रहना चाहिए।

वासवी। नटी का नतिनाट्य! नाम तो ख़ूब गढ़ा है।

मल्लिका का प्रवेश

मल्लिका। जो मन में समझ रही थी वही हुआ। राज्य में जहाँ जितने भी बुद्ध के शिष्य हैं, महाराज अजातशत्रु ने उन सभीको बुलाने के लिए दूत भेजे हैं। इस प्रकार ग्रह-पूजा चल ही रही है, कभी शनि-ग्रह तो कभी रवि-ग्रह।

रत्नावली। अच्छा ही हुआ। बुद्ध के जितने शिष्य हैं उन सबको साथ ही देवदत्त के शिष्यों के हाथों सौंप दें। इससे समय की बचत होगी।

मल्लिका। इसलिये नहीं। वे लोग राजा की ओर से अहोरात्र पापमोचन मंत्र पढ़ने को आ रहे हैं। महाराज एकदम अभिभूत हो उठे हैं।

वासवी। तो इससे क्या हुआ?

मल्लिका। कैसा आश्चर्य है! अभीतक अफ़वाह तुम्हारे कानों पहुँची ही नहीं! सभीका अनुमान है कि राह में उन लोगों ने महाराज बिम्बिसार की हत्या कर डाली है।

वासवी। सर्वनाश! यह कभी सत्य हो ही नहीं सकता!

मल्लिका। किन्तु इतना तो सत्य है कि महाराज के जैसे किसीने आग लगादी है। वे किसी पश्चात्ताप से छटपटा रहे हैं।

वासवी। हाय हाय, यह कैसा समाचार है!

रत्नावली। लोकेश्वरी महारानी ने क्या यह सुना है?

मल्लिका। उनको जो यह अप्रिय संवाद जाकर सुनाएगा उसके वह दो टुकड़े कर डालेंगी। कोई साहस नहीं करता।

वासवी। सर्वनाश हो गया। इतने बड़े पाप के आघात से राजघर का कोई भी न बचेगा। धर्म को लेकर मनमानी करना क्या कहीं सहा जा सकता है?

रत्नावली। यह लो! देखती हूं वासवी फिर नटी की चेली होने की ओर झुक रही है। भय से खदेड़े

जाने पर ही मनुष्य धर्म को मूढ़ता के पीछे जा छिपने का प्रयत्न करता है।

वासवी। कभी नहीं। मैं ज़रा भी नहीं डरती। भद्रा को यह ख़बर जाकर सुना आऊं।

रत्नावली। झूठा बहाना करके न भागना। डर तुम्हें लगा है। तुमलोगों का यह अवसाद देखकर मुझे बड़ी लज्जा होती है। यह केवल नीच संसर्ग का फल है।

वासवी। तुम यह कैसी बात कहती हो, मैं बिलकुल भी नहीं डरती।

रत्नावली। अच्छा तो अशोक-वन में नाच देखने चलो।

वासवी। क्यों न जाऊंगी! तुम समझती हो मुझे ज़बरदस्ती ले जा रही हो?

रत्नावली। अब देर ठीक नहीं, मल्लिका, श्रीमती को अभी बुलाओ, साज हुआ हो या न हुआ हो। राजकन्याएँ यदि न आना चाहें तो भी सभी राजकिंकरियों को लाना ही होगा, नहीं तो तमाशा अधूरा ही रह जायगा।

वासवी। यह तो आ रही है श्रीमती। देखो, देखो, जैसे स्वप्न में चल रही हो! जैसे दुपहरी की दीप्त-मरीचिका हो—जैसे अपने में ही नहीं!

श्रीमती का धीरे-धीरे प्रवेश और गान

हे महाजीवन, हे महामरण,
लइनु शरण, लइनु शरण ।
आँधार प्रदीपे ज्वालाओ शिखा,
पराओ, पराओ ज्योतिर टीका,
करो हे आमार लज्जा हरण ॥

रत्नावली । रास्ता इस ओर है। हमारी बातें क्या कानों में नहीं पहुंच रहीं ? यह देखो, इस ओर ।

श्रीमती । परश रतन तोमारि चरण,
लइनु शरण, लइनु शरण,
जा-किछु मलिन, जा-किछु कालो
जा-किछु विरूप होक् ता भालो,
घुचाओ घुचाओ सब आवरण ॥

रत्नावली । वासवी, खड़ी क्यों रह गई ? चलो ।

वासवी । ना, मैं नहीं जाऊंगी ।

रत्नावली । क्यों नहीं जाओगी ?

वासवी । तो सच बात कहूं : मुझसे जाया न जायगा ।

रत्नावली । डर लग रहा है ?

वासवी । हाँ, डर लग रहा है ।

रत्नावली। डरते हुए लाज नहीं आती ?

वासवी। ज़रा भी नहीं। श्रीमती, वही क्षमा-मंत्र !

श्रीमती। उत्तमंगेन वन्देहं पादपंसु-वरुत्तमं
बुद्धे यो खलितो दोसो बुद्धो खमतु तं ममं।

वासवी। 'बुद्धो खमतु तं ममं, बुद्धो खमतु तं ममं,
बुद्धो खमतु तं ममं।'

श्रीमती का गान

हार मानाले, भाँगिले अभिमान।
क्षीण हाते ज्वाला
म्लान दीपेर थाला
हल खान् खान्।
एबार तवे ज्वालो
आपन तारार आलो,
रँगीन छायार एइ गोधूलि होक् अवसान ॥
एसो पारेर साथी।
बइल पथेर हाओया, निब्‌ल घरेर बाति।
आजि बिजन बाटे
अन्धकारेर घाटे
सब-हारानो नाटे
एनेछि एइ गान ॥

सबका प्रस्थान

भिक्षुओं का प्रवेश और गान

सकल कलुष तामस हर'
जय होक् तव जय,
अमृतवारि सिञ्चन कर'
निखिल भुवनमय ।
महाशान्ति महाक्षेम
महापुण्य महाप्रेम ।

ज्ञानसूर्य्य उदय-भाति
ध्वंस करुक तिमिर-राति ।
दुःसह दुःस्वप्न घाति'
अपगत कर' भय ।
महाशान्ति महाक्षेम
महापुण्य महाप्रेम ॥

मोहमलिन अति दुर्दिन
शंकित-चित पान्थ,
जटिल-गहन पथसङ्कट
संशय-उद्भ्रान्त ।
करुणामय, मागि शरण
दुर्गति-भय करह हरण,
दाओ दुःख-बन्धतरण
मुक्तिर परिचय ।
महाशान्ति महाक्षेम
महापुण्य महाप्रेम ॥

चतुर्थ अंक

अशोक-तले। भग्न स्तूप

भग्नप्राय आसन-वेदी

रत्नावली। राजकिंकरियाँ। रक्षिणियों का एक दल।

पहली राजकिंकरी। राजकुमारी, हमें महल के काम में विलम्ब हो रहा है।

रत्नावली। तनिक-सा और ठहरो। महारानी लोकेश्वरी स्वयं आकर देखना चाहती हैं। उनके न आने तक नाच आरम्भ नहीं हो सकता।

दूसरी राजकिंकरी। हम आपकी आज्ञा से आई हैं। किन्तु अधर्म के भय से मन व्याकुल है।

तीसरी राजकिंकरी। यहीं पर प्रभु को पूजा अर्पण की है, और आज यहीं पर नटी का नाच देखें! छिः छिः! यह पाप कैसे धुलेगा?

चौथी राजकिंकरी। यहाँ पर इतना बड़ा घिनौना तमाशा होगा, यह न मालूम था। हम न ठहर सकेंगी, किसी तरह भी नहीं!

रत्नावली। अभागिनियो, तुमने सुना नहीं, बुद्ध की पूजा इस राज्य में बन्द कर दी गई है?

चौथी राजकिंकरी। राजा की अवज्ञा करना हमारे बस का नहीं। भगवान् की पूजा न की, न सही, किन्तु साथ ही उनका अपमान भी तो नहीं कर सकतीं।

पहली राजकिंकरी। राजमहल की नटी का नाच राज-कन्याओं और राजवधुओं के लिये ही है। इस सभा में हमलोगों का क्या काम? चलो हम चलें, हमारा जहाँ स्थान है वहीं जाएँ।

रत्नावली। (रक्षिणियों से) जाने मत देना-उन्हें। नटी को अब शीघ्र ही बुला लाओ।

पहली किंकरी। राजकुमारी, यह पाप नटी को तो छुएगा नहीं। यह तुम्हें ही लगेगा।

रत्नावली। तुम समझती हो कि तुम्हारे इस नवीन धर्म के नये गढ़े हुए पाप को मैं मानती हूं!

दूसरी किंकरी। मनुष्य की भक्ति का अपमान करना तो चिरंतन पाप है।

रत्नावली। मालूम पड़ता है कि तुम सभीको इस नटी-साध्वी की हवा लग गई। मुझे पाप का भय न दिखलाना, मैं कोई बच्ची नहीं।

रक्षिणी। (पहली किंकरी से) वसुमति, हमलोगों ने

श्रीमती की भक्ति की है। किन्तु यह भूल ही हुई। वह तो नाचने को राज़ी हो गई!

रत्नावली। होगी नहीं राज़ी? राजा के आदेश से डरेगी नहीं?

रक्षिणी। भय तो हम भी करती हैं किन्तु—

रत्नावली। नटी का पद क्या तुमसे ऊँचा है?

पहली किंकरी। हम तो उसे अब नटी नहीं समझती थीं। हमने उसमें स्वर्ग का आलोक देखा है।

रत्नावली। नटी स्वर्ग जाने पर भी नाचती है, यह नहीं जानतीं?

रक्षिणी। श्रीमती पर कहीं राजा के आदेश से आघात न करना पड़े, यही भय था किन्तु आज मालूम होता है, राजा के आदेश की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं।

पहली किंकरी। उन पापिनियों की बात रहने दे! किन्तु इस पाप-दृश्य से दोनों आँखें कलंकित करने पर हमारी क्या गति होगी?

रत्नावली। अभी तक नटी का सिंगार पूरा नहीं हुआ! देखती हो, तुम्हारी इस नटीसाध्वी को साज-बाज का कितना शौक़ है!

पहली किंकरी। यह आगई! उफ़, देखती है कैसी चमक-दमक रही है!

दूसरी किंकरी। पाप-देह पर सौ बातियों का प्रदीप जलाया है इसने!

श्रीमती का प्रवेश

पहली किंकरी। पापिष्ठा, श्रीमती! भगवान् के आसन के सामने, बेशर्म! आज तू नाचेगी! तेरे दोनों पाँव सूखकर अभी तक काठ क्यों नहीं हो गए?

श्रीमती। और कोई गति नहीं, ऐसा ही आदेश है।

दूसरी राजकिंकरी। नरक में जाने पर सौ-लाख वर्ष तक जलते-बलते अंगारों पर तुझे दिन-रात नाचना पड़ेगा, यह मैं कहे रखती हूं।

तीसरी राजकिंकरी। ज़रा देखो तो। पापिनी ने सिर से पैर तक गहने पहने हैं। हर गहना आग की बेड़ी बनकर तेरे हाड़माँस को जकड़े रहेगा, तेरी प्रत्येक नाड़ी में ज्वालाओं का स्रोत बहा देगा—सो जानती है?

मल्लिका का प्रवेश

मल्लिका। (जनान्तिक—रत्नावली से) राज्य में बुद्ध-पूजा पर जो प्रतिबंध की घोषणा की गई थी वह अब उठा ली गई है। रास्ते-रास्ते दुंदुभी बजाकर उसीकी घोषणा हो रही है। शायद यहाँ भी वे लोग अभी आते ही हों, इसीलिये संवाद दिए जाती हूँ। एक संवाद और भी

है। आज महाराज अजातशत्रु स्वयं यहां आकर पूजा करेंगे ; उसीके लिये प्रस्तुत हो रहे हैं।

रत्नावली। ज़रा दौड़कर जाओ तो मल्लिका! महारानी लोकेश्वरी को शीघ्र बुला लाओ।

मल्लिका। यह लो, वे आ ही रही हैं!

लोकेश्वरी का प्रवेश

रत्नावली। महारानी, यह है आपका आसन।

लोकेश्वरी। ठहरो। श्रीमती से अकेले में मुझे कुछ कहना है। (श्रीमती को अलग ले जाकर) श्रीमती!

श्रीमती। क्या है महारानी!

लोकेश्वरी। यह ले, तेरे लिये लाई हूं।

श्रीमती। क्या लाई हैं?

लोकेश्वरी। अमृत।

श्रीमती। कुछ समझी नहीं।

लोकेश्वरी। विष। इसे पीकर मर जा, परित्राण पा जाएगी।

श्रीमती। परित्राण का क्या कोई और उपाय नहीं मानतीं?

लोकेश्वरी। नहीं। रत्नावली पहले ही जाकर राजा से तेरे लिये नाच का आदेश ले आई है। वह आदेश किसी तरह भी टाला नहीं जा सकता।

रत्नावली। महारानी, अब और समय नहीं, नृत्य आरम्भ हो।

लोकेश्वरी। यह ले, शीघ्र पी जा। यहाँ पर मरके स्वर्ग पाएगी, और यदि नाचेगी तो जाएगी अवीचि नरक में।

श्रीमती। सबसे पहले आदेश पालन कर लूं।

लोकेश्वरी। नाचेगी?

श्रीमती। हाँ, नाचूंगी।

लोकेश्वरी। तुझे भय नहीं?

श्रीमती। नहीं, कुछ नहीं।

लोकेश्वरी। तब तो कोई भी उद्धार न कर सकेगा।

श्रीमती। जो उद्धारकर्त्ता हैं, उन्हें छोड़कर और कोई भी नहीं।

रत्नावली। महारानी, अब और एक मुहूर्त्त की भी देर न चल सकेगी। बाहर कोलाहल नहीं सुन रही हैं? शायद विद्रोही लोग अभी-अभी राजोद्यान में घुस पड़ेंगे। नटी! नाच शुरू हो।

श्रीमती का गान और नाच

आमाय क्षमो हे क्षमो, नमो हे नमो
तोमाय स्मरि, हे निरुपम,
नृत्यरसे चित्त मम
उछल हये बाजे॥

आमार सकल देहेर आकुल रवे
मन्त्रहारा तोमार स्तवे
डाहिने वामे छन्द नामे
नवजनमेर माझे।
तोमार वन्दना मोर भङ्गीते आज
सङ्गीते विराजे॥

रत्नावली। यह कैसा नाच? यह तो नाच का स्वांग है। और इस गान का अर्थ क्या है?

लोकेश्वरी। ना ना, बाधा न दे।

गान और नाच

ए कि परम व्यथाय पराण काँपाय
काँपन वक्षे लागे
शान्तिसागरे ढेउ खेले जाय
सुन्दर ताय जागे।
आमार सब चेतना सब वेदना
रचिल ए जे की आराधना,
तोमार पाये मोर साधना
मरे ना जेन लाजे।
तोमार वन्दना मोर भङ्गीते आज
सङ्गीते विराजे॥

रत्नावली। यह क्या हो रहा है? गहनों को प्रत्येक ताल पर उस स्तूप को आवर्जना के बीच फेंकती जा रही है। यह गया कंकण, यह गया केयूर, वह गया हार! महारानी, देखती हैं, ये सब राजमहल के अलंकार हैं—यह कैसा अपमान! श्रीमतो, ये मेरी अपनी देह के गहने हैं। बटोरकर सिर पर लगा, अभी जा, अभी।

लोकेश्वरी। शांत हो, शांत हो। उसका कोई दोष नहीं, इसी तरह आभरण निकालकर फेंक देना—यही तो इस नाच का अंग है। आनन्द से मेरा शरीर भी दोलित हो उठा है। (गले पर से हार खोलकर फेंकती है) श्रीमती, रुकना मत, रुकना मत।

गान और नाच

आमि कानन हते तुलि नि फूल
मेले नि मोरे फल।
कलस मम शून्य सम
भरि नि तीर्थजल।
आमार तनु तनुते बाँधनहारा
हृदय ढाले अधरा-धारा,
तोमार चरणे होक् ता सारा
पूजार पुण्यकाजे।
तोमार वन्दना मोर भङ्गीते आज
सङ्गीते विराजे॥

रत्नावली। यह कैसे नाच की विडंबना है! नटी का वेश एक एक करके फेंक दिया। देखती हो महारानी, भीतर से भिक्षुणी का पीत वस्त्र! क्या इसीको पूजा नहीं कहते? रक्षिणियो, तुम देख रही हो? महाराज ने क्या दण्ड-विधान किया है याद नहीं?

रक्षिणी। श्रीमती ने तो पूजा का मंत्र पढ़ा नहीं।

श्रीमती। (घुटने टेककर) बुद्धं सरणं गच्छामि—

रक्षिणी। (श्रीमती के मुँह पर हाथ देकर) रुक, रुक दुःसाहसिका, अब भी रुक जा।

रत्नावली। राजा के आदेश का पालन करो।

श्रीमती। बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि—

किंकरियाँ। सर्वनाश न कर श्रीमती, रुक जा, रुक जा!

रक्षिणी। मौत के मुँह में न जा, दीवानी!

दूसरी रक्षिणी। मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूं, हमारे ऊपर दया करके शांत हो जा।

किंकरीगण। आँखों से हम यह न देख सकेंगी, न देख सकेंगी, चलो भाग चलें। (पलायन)

रत्नावली। राजा के आदेश का पालन करो।

श्रीमती। बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि, संघं सरणं गच्छामि।

लोकेश्वरी। (घुटने टेककर साथ ही साथ) बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि, संघं सरणं गच्छामि।

रक्षिणी के श्रीमती पर अस्त्राघात करते ही वह आसन
पर गिर पड़ती है। 'क्षमा करो, क्षमा करो',
कहती हुई रक्षिणियाँ एक-एक
करके श्रीमती के पावों की
धूल लेती हैं।

लोकेश्वरी। (श्रीमती का सिर गोद में लेकर) नटी, तू अपना यह भिक्षुणो का वस्त्र मुझे दे गई। (वस्त्र का एक छोर माथे से छुआकर) यह मेरा है।

रत्नावलो धूल पर बैठ जाती है

मल्लिका। क्या सोचती हो ?

रत्नावली। (आँचल से मुँह ढँककर) अब मुझे भय हो रहा है।

प्रतिहारिणी का प्रवेश

प्रतिहारिणी। महाराज अजातशत्रु भगवान् की पूजा के लिये कानन-द्वार पर प्रतीक्षा कर रहे हैं, देवियों की सम्मति चाहते हैं।

मल्लिका। चलो, मैं महाराज को देवियों की सम्मति जता आऊं।

मल्लिका का प्रस्थान

लोकेश्वरी। कहो तुम सब : बुद्धं सरणं गच्छामि।

रत्नावली को छोड़कर बाक़ी सभी :

बुद्धं सरणं गच्छामि।
लोकेश्वरी। धम्मं सरणं गच्छामि।

रत्नावली को छोड़कर बाक़ी सभी :

धम्मं सरणं गच्छामि।
लोकेश्वरी। संघं सरणं गच्छामि।

रत्नावली को छोड़कर बाक़ी सभी :

संघं सरणं गच्छामि।
नत्थि मे सरणं अञ्ञं बुद्धो मे सरणं वरं।
एतेन सच्चवज्जेन होतु मे जयमङ्गलं॥

मल्लिका का प्रवेश

मल्लिका। महाराज आए नहीं, लौट गए।

लोकेश्वरी। क्यों ?

मल्लिका। संवाद सुनकर वे भय से काँप उठे।

लोकेश्वरी। उन्हें किसका भय है ?

मल्लिका। उस हतप्राण नटी का।

लोकेश्वरी। चलो पालकी ले आएँ। इसकी देह सभीको वहन करके ले जानी होगी। (रत्नावली को छोड़कर बाकी सबका प्रस्थान)

रत्नावली। (श्रीमती के पैर छूकर प्रणाम करती है और घुटने टेककर बैठती है) :

बुद्धं सरणं गच्छामि,
धम्मं सरणं गच्छामि,
संघं सरणं गच्छामि।

ज्ञातव्य

'नटी की पूजा' रवीन्द्रनाथ की मूल बँगला नाटिका 'नटीर पूजा' का हिन्दी अनुवाद है। बौद्ध-साहित्य के 'अवदानशतक' के एक आख्यान के आधार पर इसकी रचना हुई है। रवीन्द्रनाथ ने इसी कथा का आश्रय लेकर अपने 'कथा और काहिनी' कविता-संग्रह की 'पुजारिनी' कविता भी लिखी थी। भविष्य में हम रवीन्द्र-ग्रन्थावली के पाठकों की सेवा में अन्य कविताओं के साथ उसे भी प्रस्तुत कर सकेंगे। हमारा विचार मूल बँगला कविताओं को देवनागरी लिपि में देने का है। साथ में हिन्दी में उनकी छाया भी दी होगी जिसके सहारे पाठक स्वयं मूल काव्य का रस ले सकेंगे। बँगला भाषा जाने बिना भी कविताओं के उच्चारण और छन्द का बोध कराने के लिये साथ में बँगला की उच्चारण-पद्धति के विषय में एक टिप्पणी भी होगी।

सन् १९२६ में शान्तिनिकेतन में प्रस्तुत मूल नाटिका का प्रथमबार अभिनय हुआ था। उस समय भिक्षु उपालि का चरित्र और नाटिका का सूचनांश उसमें नहीं था। उसी वर्ष जब कलकत्ते के जोड़ासाँको में नाटिका का द्वितीय अभिनय हुआ तब कवि ने इन दोनोंका संयोजन किया। उपालि की भूमिका में स्वयं उन्होंने अभिनय किया था।

विशेष जानकारी के लिये पाठक बँगला 'रवीन्द्र-रचनावली' का १८ वाँ खण्ड देख सकते हैं। नाटिका में आए हुए मूल बँगला गीतों

की हिन्दी छाया क्रम से आगे दी जा रही है। इनकी स्वरलिपियाँ विश्वभारती से प्रकाशित बँगला 'स्वरवितान' के निम्नलिखित खण्डों में मिल सकती हैं :

पूर्वगगन भागे	स्वरवितान १३
निशीथे की कये गेल	स्वरवितान १
तुमि कि एसेछ मोर द्वारे	स्वरवितान १
बाँधन-छेंड़ार साधन हबे	स्वरवितान २
आर रेखो ना आँधारे	स्वरवितान ५
हिंसाय उन्मत्त पृथ्वी	स्वरवितान १
पथे जेते डेकेछिले मोरे	स्वरवितान २
हे महाजीवन, हे महामरण	स्वरवितान ५
हार मानाले, भाङ्गिले अभिमान	स्वरवितान ३
सकल कलुष तामस हर	स्वरवितान १३
आमाय क्षमो हे क्षमो	स्वरवितान २

पृष्ठ १—पूर्व-गगन-प्रान्त में सुप्रभात दीप्त हुआ है, तरुण अरुण की लालिमा से रंजित होकर। अरे, आज के शुभ्र शुभ मुहूर्त्त को सार्थक बनाओ और उसे अमृत से भर दो। आज कौन ऐसा अमित-पुण्यभागी है जो इस पृथ्वी पर जाग उठा है!

पृ० १२—निशीथ में वह मेरे मन में न जाने क्या कह गया। न जाने वह नींद में कह गया था जागरण में!

पृ० १३—हाय अभागिनी, बन्धन क्यों भूषण बनकर तुझे भुला रहा है और मरण क्यों मोहिनी हँसी हँसकर तुझे भुला रहा है!

पृ० २०—निशीथ में मेरे मन में वह न जाने क्या कह गया। न जाने वह नींद में कह गया या जागरण में। नाना काम-काज लेकर और नाना प्रकार से मैं घर में और रास्ते में फिरती हूं। वह बात क्षण क्षण अगोचर में बजती है। कौन जाने,—कौन जाने वह बात क्या अकारण ही हृदय को व्यथित करती है, यह क्या भय है या जय! वह बात क्या बार-बार कानों में यही कहती है—"और नहीं, और नहीं!" वह नाना स्वरों में मुझसे कहती है—"चलो दूर!" वह क्या मेरे हृदय में बजती या आकाश में बज रही है—कौन जाने! कौन जाने!

पृ० २६—तुम क्या मुझे खोजने के लिये मेरे द्वार पर आए हो? तुम्हारी जिस पुकार पर कुसुमवृंद गोपनीयता से नम्र शाखा-शाखा पर प्रकटित होते हैं, उसी पुकार से मुझे भी पुकारो। तुम्हारी उस पुकार से वह पुष्प बाधाओं को भूल जाता है, और उसका श्यामल गोपन प्राण धूलि का अवगुण्ठन खोल देता है। तुम्हारी उस पुकार पर सहसा नवीन ऊषा आलोक की झारी लिये आती है और वह घने अंधकार में से उत्तर देता है।

पृ० ४४—आज बंधन तोड़ने की साधना होगी। मा भैः, मा भैः की आवाज़ के साथ किनारा छोड़ दूंगी। जिसके हाथ की जयमाला रुद्रदाह की अग्निज्वाला है, उस भैरव को बार-बार प्रणाम है। कालरूपी समुद्र में प्रकाश का यात्री जो दिन-रात शून्य में दौड़ता है, उसीके तरंग की पुकार आई है। अकूल प्राणों के उस उत्सव में मेरे वक्षःस्थल में वज्र की भेरी बज उठे।

पृ० ४९—अब और मुझे अंधकार में न रखो, देखने दो! अपने में मुझे अपने-निज को देखने दो! रुलाओ यदि इस बार रुलाना ही हो, सुख की ग्लानि अब सही नहीं जाती, अश्रु-धारा से मेरे नेत्र धुल जाँय; मुझे देखने दो! जानती नहीं कौन है यह काली छाया! अपने बल से जब वह भुलाती है तो विषय-माया सघन हो उठती है। स्वप्नों के भार से बोझ बढ़ गया,—शून्य है चिरजीवन स्वप्नों की खोज! मेरा जो प्रकाश रात्रि के अंधकार के उस पार छुपा हुआ है, उसे मुझे देखने दो!

पृ० ५५—हिंसा से धरणी उन्मत्त है, नित्य निष्ठुर द्वन्द्व हो रहा है। उस धरणी का पंथ घोर टेढ़ा-मेढ़ा है और उसका बंधन लोभ-जटिल है। तुम्हारे नूतन जन्म के हेतु सब प्राणी कातर हो रहे हैं। हे महाप्राण, त्राण करो, अपनी अमृत-वाणी का आनयन करो, चिरन्तन मधु के निर्झर प्रेम-पद्म को विकसित करो। हे मुक्त, हे अनन्तपुण्य, हे करुणा-घन, पृथ्वी-तल को कलंक-शून्य कर दो।

हे दानवीर, आओ! त्याग की कठिन दीक्षा दो। हे महाभिक्षु, सबके अहंकार को भिक्षा में ग्रहण करो। सभी लोग शोक भूल जाएँ, मोह का अन्त कर दो। ज्ञान-सूर्य का उदय-समारोह आलोकित हो। सभी भुवन प्राण-प्रेरित हों। अन्धे नयन-लाभ करें। हे शान्त, हे मुक्त, हे अनन्तपुण्य, हे करुणा-घन, पृथ्वी-तल को कलंक-शून्य कर दो।

ताप की ज्वाला से दीप्त निखिल हृदय क्रन्दनमय है, सब

कुछ विषय-विष के विकार से जीर्ण नष्टप्राय और अतृप्त है। प्रत्येक देश ने रक्त कलुष और ग्लानि का टीका पहन लिया है। तुम अपने मंगल-शंख को लाओ, अपना दाहिना हाथ बढ़ाओ। हे शान्त, हे मुक्त, हे अनन्तपुण्य, हे करुणाघन, पृथ्वी-तल को कलंक-शून्य कर दो।

पृ० ५९—पथ पर जाते हुए तुमने मुझे पुकारा था। पर मैं तो पीछे रह गई हूं, किस तरह आऊं। निविड़ निशा आई है, निविड़ अन्धकार में पथ-रेखा मिट गई है, मेरी पुकार का उत्तर दो। भय लगता है, कहीं जितना ही मैं चलती जाऊँगी, उतना ही दूर न चली जाऊँ। समझती हूं कि तुम पास ही हो, पर तब भी भय लगता है, कहीं मैं रहूं किन्तु तुम न रहो—इस काल-रात्रि के प्रभात में!

पृ० ६६—हे महाजीवन, हे महामरण, तुम्हारी शरण में आई हूं, शरण में आई हूं। इस अंधियारे प्रदीप में शिखा प्रज्वलित कर दो, ज्योति का टीका लगादो, लगादो! अहे, मेरी लज्जा दूर करो। तुम्हारे चरण पारसमणि हैं, तुम्हारी शरण में आई हूं, शरण में आई हूं। जो कुछ मलिन, जो कुछ काला, जो कुछ विरूप हो, वह सब शुभ हो जाय। सब आवरण दूर कर दो, दूर कर दो!

पृ० ६७—तुमने हार मनवाई, अभिमान चूर कर दिया! क्षीण हाथों में जलाए हुए म्लान दीप का थाल टुकड़े-टुकड़े हो गया। अब इस बार अपने तारों का प्रदीप जलाओ। रंगीन छायावाली इस गोधूलि का अन्त हो। हे उस पार के

संगी, आओ। पथ की हवा बही, घर की बाती बुझ गई। आज विजन मार्ग पर, अन्धकार के घाट पर, सब-कुछ-खो-देने-वाले इस नृत्य के रूप में यह गान लाई हूं।

पृ० ६८—समस्त कलुष और अन्धकार को हरण करो, जय हो, तुम्हारी जय हो! अमृतवारि से निखिल भुवन को सिंचित करो, हे महाशान्ति, महाक्षेम, महापुण्य, महाप्रेम! ज्ञानसूर्य के उदय की आभा तिमिर-रात्रि का विध्वंस करे। दुःसह दुःस्वप्नों न   ष्ट करके भय दूर करे। हे महाशान्ति, महाक्षेम, महापुण्य, महाप्रेम! आज मोह से मलिन दुर्दिन आया है, राही शंकित है, मार्ग का संकट अत्यन्त जटिल है, वह संशय से उद्भ्रान्त हो रहा है। हे करुणामयी, शरण दो, दुर्गति और भय का हरण करो। दुःख के बंधन को पार करने वाली मुक्ति का परिचय दो।

पृ० ७४—मुझे क्षमा करो हे, क्षमा करो, तुम्हें नमस्कार करती हूं। हे निरुपम, तुम्हें स्मरण कर मेरा चित्त नृत्य-रस से छलककर बज रहा है। मेरी सारी देह के आकुल रव में, तुम्हारे मंत्र-हीन स्तव से, नव-जन्म के मध्य, दाहिने-बायें दोनों ओर छन्द झर रहे हैं। आज मेरी भंगी में—मेरे सङ्गीत में तुम्हारी वन्दना विराज रही है।

पृ० ७५—यह कैसी परम व्यथा प्राणों को कंपित कर रही है! वह कम्पन मेरे वक्ष से लग रहा है। शान्तिसागर में लहरें खेल रही हैं, उसमें 'सुन्दर' प्रकट हो रहा है। मेरी सारी

चेतना और सारी वेदना ने यह कैसी आराधना रच डाली है। ऐसा हो कि तुम्हारे चरणों में मेरी साधना लाज से मर न जाय। आज मेरी भङ्गी में—सङ्गीत में तुम्हारी वन्दना विराज रही है।

पृ० ७६—मैंने कानन से फूल नहीं चुने, फल भी मुझे नहीं मिले। अपने सूने-से कलश में तीर्थजल भी नहीं भरा। मेरे अंग-अंग में मेरा बंधनहीन हृदय न-धरी-जा-सकने-वाली धारा ढाल रहा है। उसका यह अर्घ्य पूजा के पुण्य कार्य में तुम्हारे चरणों में अर्पित हो। आज मेरी भङ्गी में—मेरे सङ्गीत में तुम्हारी वन्दना विराज रही है।

प्रकाशक मोहनलाल वाजपेयी
हिन्दी प्रकाशन समिति, विश्वभारती ग्रन्थन विभाग
शान्तिनिकेतन

मुद्रक श्रीप्रभातकुमार मुखोपाध्याय
शान्तिनिकेतन प्रेस, शान्तिनिकेतन, वीरभूम